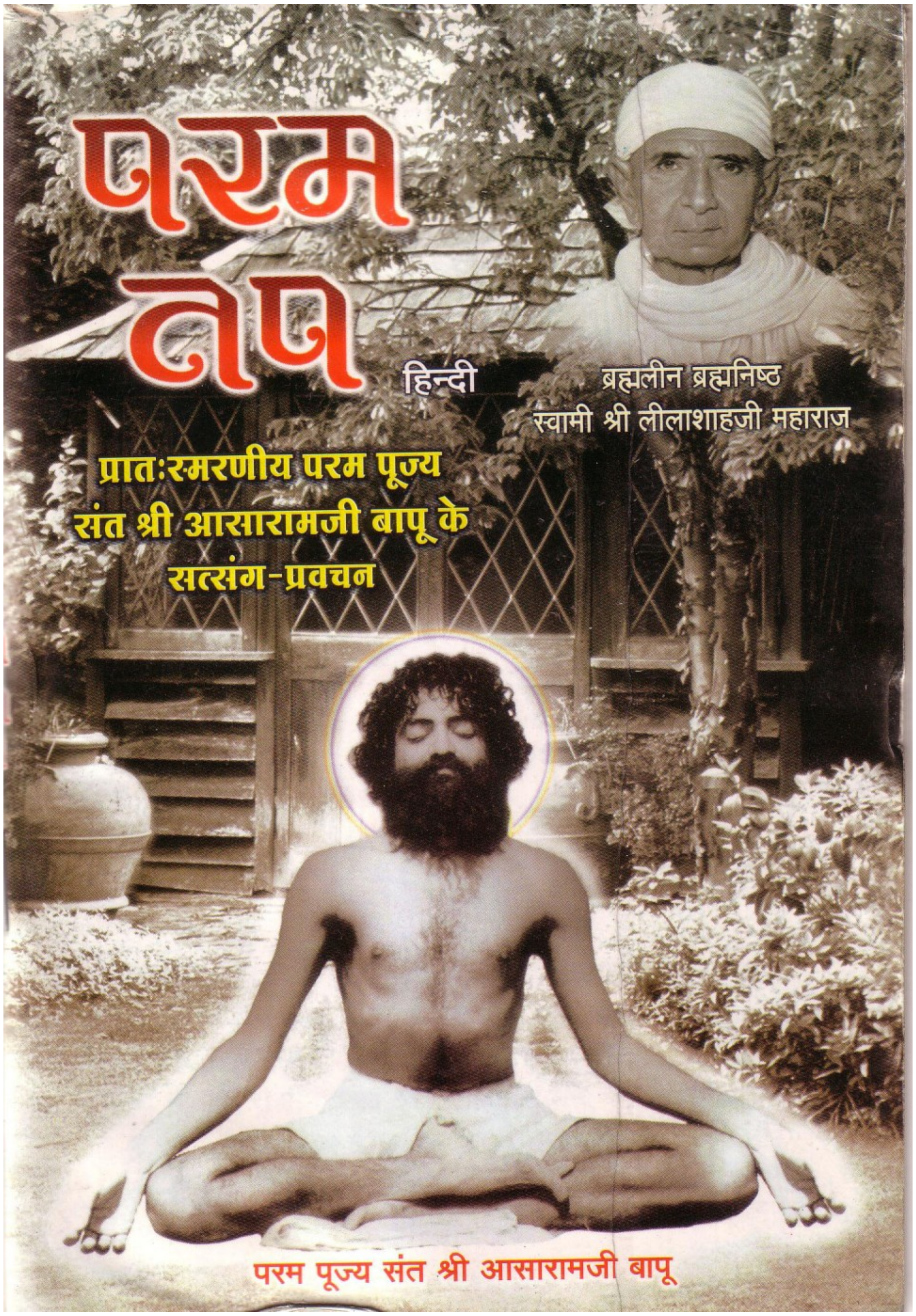

परम
तप
हिन्दी
ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ
स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज
प्रातःस्मरणीय परम पूज्य
संत श्री आसारामजी बापू के
सत्संग-प्रवचन
परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू

प्रातः स्मरणीय परम पूज्य संत श्री आसाराम जी के सत्संग-प्रवचन

परम तप

निवेदन

हर क्षेत्र में सफलता की शर्त एकाग्रता है। जीवन में उसका बड़ा महत्त्व है। भूतकाल के राग-द्वेष, वर्तमान की विषयासक्ति और भविष्य के शेखचिल्ली जैसे विचार छोड़कर हर क्षेत्र में सफल होने के लिए एकाग्रता परम आवश्यक है। इस विषय को पूज्यपाद स्वामीजी ने इस पुस्तक में सहज और सरल भाषा में समझाया है। एकाग्र होने की कुछ युक्तियाँ भी दी हैं।

तपः सु सर्वेषु एकाग्रता परं तपः।

इस परम तप को बढ़ाने वाली यह पुस्तक साधकों के करकमलों में प्रस्तुत करते हुए समिति कुछ अंशों में कृतार्थ हो रही है।

श्री योग वेदान्त सेवा समिति
अमदावाद आश्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

परम तप

मनसश्चेन्द्रियाणां च ह्यैक्राग्यं परमं तपः।
तज्जयः सर्व धर्मेभ्यः स धर्मः पर उच्यते।।

'मन और इन्द्रियों की एकाग्रता ही परम तप है। उनका जय सब धर्मों से महान है।'

(श्रीमद् आद्य शंकराचार्य)

तपः सु सर्वेषु एकाग्रता परं तपः।

तमाम प्रकार के धर्मों का अनुष्ठान करने से भी एकाग्रतारूपी धर्म, एकाग्रतारूपी तप बड़ा होता है। हम लोग देखते हैं कि जिस जिस व्यक्ति के जीवन में जितनी एकाग्रता है वह उतने अंश में उस क्षेत्र में सफल होता है, फिर वह आईन्स्टीन का विज्ञान हो चाहे सॉक्रेटीज का तत्वचिन्तन हो, रामानुजाचार्य का भक्तिभाव हो चाहे शंकराचार्य का अद्वैतवाद हो, कबीर जी का अव्यक्त हो चाहे मीरा का गिरधर गोपाल हो। जिस विषय में जितने अंश में एकाग्रता होती है उतने ही अंश में उस व्यक्ति का जीवन उस विषय में चमकता है।

एकाग्रता और भगवददर्शन

जिस मूर्ति को गौरांग निहारते थे उस जगन्नाथजी को औरों ने भी निहारा था। लेकिन गौरांग की इतनी एकाग्रता थी कि वे सशरीर उसी मूर्ति में समा गये। जिस मूर्ति को मीराजी देखती थी उस मूर्ति को और लोग भी देखते थे। लेकिन मीरा की एकाग्रता ने अदभुत चमत्कार कर दिया। धन्ना जाट ने सिलबट्टा पाया पण्डित से। जिस सिलबट्टे से पण्डित रोज भाँग रगड़ता था वही सिलबट्टा धन्ना जाट की दृष्टि में ठाकुरजी बना और पूजा में रखा गया। धन्ना जाट की इतनी एकाग्रता हुई कि ठाकुर जी को उसी सिलबट्टे में से प्रकट होना पड़ा। काले कुत्ते को अनेक यात्रियों ने देखा। नामदेव भी एक यात्री थे। अलग-अलग तम्बू लगाकर यात्री लोग भोजन बना रहे थे। कुत्ते को आया देखकर कोई बोलाः यह अपशकुन है। किसी ने कहाः काला कुत्ता तो शकुन माना जाता है। वे लोग कुत्ते की चर्चा कर रहे थे और इतने में कुत्ता नामदेव की रोटी लेकर भागा। कुत्ते में भी भगवान को निहारनेवाले भक्त नामदेव घी की कटोरी लेकर पीछे भागे। सबमें भगवान को निहारने की उनकी इतनी एकाग्रता थी, इतनी दृढ़ता थी कि उस कुत्ते में से भगवान को प्रकट होना पड़ा।

अनुक्रम

एकाग्रताः सफलता की कुंजी

मनोवैज्ञानिकों का विज्ञान अगर मेज को कुर्सी दिखाने में सफल हो सकता है तो योगियों का विज्ञान जड़ में छुपे हुए चेतन को प्रकट करने में सफल क्यों नहीं हो सकता? वास्तव में जड़

जैसी कोई चीज नहीं है। जो जड़ दिखता है वह सब चेतन का विवर्त ही है। चेतन की घन सुषुप्ति को हम जड़ कहते हैं, क्षीण सुषुप्ति को वृक्ष आदि कहते हैं। वही चेतन अनेक प्रकार के स्वप्नों में, कल्पना में जब होता है तब उसी को जीव कहते हैं और वही जब अपने स्वरूप में जागता है तब शिवस्वरूप हो जाता है।

रामायण का विद्वान हो चाहे भागवत का विद्वान हो, कथाकार हो चाहे श्रोता हो, वकील हो चाहे न्यायाधीश हो लेकिन जब गूढ़ विषय का या गूढ़ बात का रहस्य खोजना हो तब वे लोग शांत और स्थिर हो जाते हैं। स्थिर होने का उनका जितना अभ्यास होता है उतना वे उस विषय में अधिक कुशल होते हैं।

यहाँ शंकराचार्य जी की बात हमें शब्दशः स्वीकार्य है कि मन और इन्द्रियों की एकाग्रता ही परम तप है। उनका जब सब धर्मों से महान है।

जो लोग भक्ति के मार्ग पर हैं और एकाग्रता की ओर ध्यान नहीं देते वे बेचारे रोते हैं किः "कुछ नहीं हुआ.... पच्चीस साल से भक्ति करते हैं लेकिन लड़का हमारा कहा नहीं मानता।"

जो लोग योग की ओर चले हैं लेकिन योग के द्वारा एकाग्रता का जो तरीका जानना चाहिए वह नहीं जाना तो महीना-दो-महीना योग करके कहेंगे कि योग में कुछ नहीं है, हमने करके देख लिया।

एकाग्रता कैसे प्राप्त होती है इस विषय का ज्ञान जब तक नहीं है तब तक अदभुत सामर्थ्य, हमारे अदभुत खजाने जो सुषुप्त हैं, छुपे हुए हैं, उनसे हम लोग वंचित रह जाते हैं। एकाग्रता हुई तो तपी का तप सिद्ध हो जायेगा, जपी का जप सफल हो जायेगा, योगी का योग सिद्ध हो जायेगा, सत्ताधीश सत्ता में सफल हो जायेगा, दुकानदार दुकानदारी में सफल हो जायेगा।

अनुक्रम

एकाग्रता से आत्मशांति

एकाग्रता स्वयं एक अदभुत सामर्थ्य है, सब धर्मों से श्रेष्ठ है। कोई सब धर्मों को जान लें, मान ले लेकिन अगर एकाग्रता नहीं है तो चित्त प्रासादिक शांति से पूर्ण नहीं होगा। यदि एकाग्रता सिद्ध की है तो एक ही धर्म का थोड़ा-सा रहस्य भी अवगत होने पर चित्त शीघ्र ही प्रसाद से पूर्ण हो जायेगा। रामकृष्ण परमहंस में ऐसी एकाग्रता थी कि वे जैसा चिन्तन करते थे वैसा उनका स्थूल शरीर भी बन जाता था।

सखी सम्प्रदाय में मानते हैं कि एकमात्र भगवान ही पुरुष हैं, बाकी हम सब स्त्रियाँ हैं। स्वयं को स्त्री मानकर साधना की जाती है। बंगाल के तरफ इस सखी सम्प्रदाय का प्रचलन है। रामकृष्ण ने यह साधना की तो उनका वक्षः स्थल उभर आया, शरीर महिलाओं जैसा होने लगा।

आवाज भी स्त्रियों जैसी हो गई। एकाग्रता ने जोर पकड़ा तो रामकृष्ण को मासिक धर्म आने लगा।

मन का इतना प्रभाव है कि अगर पुरुष एकाग्रता से चिन्तन करे कि 'मैं स्त्री हूँ....' तो उसको मासिक धर्म हो सकता है। पुरुष अगर एकाग्रता से चिन्तन करे 'मैं इन सबका साक्षी हूँ....' तो उसके साक्षी होने में भी देर नहीं है। पुरुष यह चिन्तन करने लगे की यह सब आने-जानेवाला है, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ ये सब प्रकृति के हैं, उसको देखनेवाला मैं **असंगो अयं पुरुषः केवल निर्गुणश्च** तो क्यों वह सफल नहीं होगा? इस प्रकार एकाग्रता को तत्त्वज्ञान में ले जाओ तो बेड़ा पार हो जाये। आदमी अगर एकाग्रता को संसार में खर्च करता है, संसार के लिए एकाग्रता का उपयोग करता है तो उसको रिद्धि-सिद्धि, सफलता आदि मिलते हैं।

कई प्रकार के लोग योग करते हैं। विरक्त लोग भी योग करते हैं और अविरक्त लोग भी योग करते हें। संसार के आकर्षण से जो विरक्त नहीं हुआ वह अविरक्त है। उसे भोगी कहा जाता है। भोगी जब योग करेगा तब योग का उपयोग भोग में करेगा। यश का भोग, धन का भोग, प्रतिष्ठा का भोग, वाहवाही का भोग।

सचमुच जो निष्कामी महापुरुष हैं, वे अगर योग करते हैं, ध्यान करते हैं तो उनकी एकाग्रता चित्त की विश्रांति, आत्म-विश्रांति प्राप्त कराती है। असुर लोग एकाग्रता करते हैं तो उसका उपयोग दूसरों को सताने में करते हैं और सज्जन लोग एकाग्रता करते हैं तो उसका उपयोग परमात्मा को पाने में करते हैं। भोगी लोग एकाग्रता करते हैं भोग में सफल होने के लिए और त्यागी लोग एकाग्रता करते हैं योग में सफल होने के लिए। इस प्रकार एकाग्रता तो सबके लिए उपयोगी है, वह भोगी हो चाहे त्यागी हो, सुर हो चाहे असुर हो।

अनुक्रम

कर्कटी राक्षसी की कथा

योगवाशिष्ठ महारामायण में कथा आती है कि कर्कटी नामक एक राक्षसी ने सोचा कि मैं हर एक जीव को फँसाने के लिए भाग-दौड़ करूँ, कभी कोई हाथ आये न आये, इससे तो मैं ऐसी एकाग्रता प्राप्त करुँ कि जब चाहूँ तब सूक्ष्म हो जाऊँ और नासिका के मार्ग द्वारा जीवों में प्रवेश करूँ। फिर खूब रक्तपान करूँ। उसने हिमालय जाकर तप किया। एकाग्र होकर साधना में दत्तचित्त हो गई। ब्रह्माजी आये और वरदान दिया। वरदान पाकर वह राक्षसी जीवों के हृदय में घुसकर उनका रक्तपान करती। रक्तपान करने से वह मोटी हो जाती। नाटी और मोटी होने से जीने में अड़चन पड़ती थी। उसने सोचा कि तप करके विशालकाय हो जाऊँ। विशालकाय होकर भी कुछ सार न पाया। फिर सूक्ष्म होकर गीध में प्रविष्ट हो गई। वह गीध को प्रेरित करके उसे हिमालय की ओर उड़ा ले गई। वहाँ पहुँचकर गीध को उल्टी कराकर बाहर निकल आयी। फिर उसने बड़ी

एकाग्रता से तप किया। ब्रह्माजी को ब्रह्मपुरी से आकर कहना पड़ा किः "बेटी ! मैं खुश हूँ। **वरं ब्रूयात्।**

ब्रह्माजी बुला रहे थे फिर भी कर्कटी की आँख खुली नहीं ! उसके चित्त में एकाग्रता से इतनी विश्रांति मिल गई की बस ! बाहर आने का नाम नहीं। फिर भी उसने धीरे-धीरे अपने चित्त को बहिर्मुख किया और उठकर ब्रह्माजी को प्रणाम किया। वर माँगने के लिए तो तप करने बैठी थी लेकिन एकाग्रता में इतनी गहरी उतर गई कि वर माँगने की रूचि न रही। वह बोलीः

"जिसकी सत्ता से आप वर देते हैं उसी सत्ता में मैं विश्राम कर रही हूँ। अब वह एकाग्रता आत्म-साक्षात्कार में परिवर्तित हो गई है।"

ब्रह्माजी ने कहाः "फिर भी तेरा प्रारब्ध शेष है। तू राक्षसी है। जीवों का भोजन करना तेरा जन्मजात स्वभाव है। लेकिन अब तू पामरों को, पापियों को खाना। जो ज्ञानवान हों, सदाचारी हों, सत्संगी हों उनको न सताना।"

ब्रह्माजी की आज्ञा शिरोधार्य करके कर्कटी अपने प्रारब्ध के अनुसार वनों में विचरने लगी। एकाग्रता से उसमें इतनी शक्ति आ गई थी कि वह जब चाहे तब विराट हो जाय, जब चाहे तब नन्हीं मुन्नी हो जाये। जैसा रूप धारण करना चाहे वैसा कर सकती थी।

एकाग्रता में इतनी शक्ति है कि आदमी मनःशरीर में पहुँच जाता है। फिर अपने मन की इच्छा के अनुसार उसके रूप बन जाते हैं। ऐसा मनुष्य चाहे जितने शरीर बना सकता है, चाहे जहाँ जा सकता है। देखे-अनदेखे विषयों को जानना चाहे तो एकाग्रता से जान सकता है। समुद्र पार की चीजों को देखना चाहे तो देख सकता है। अज्ञात व्यक्तियों को देखना चाहे तो ध्यान द्वारा देख सकता है।

एकाग्रता में जो सफल हो गये हैं वे जिस आदमी के प्रति जैसा संकल्प करते हैं वैसे स्वभाव में वह आदमी ढल भी सकता है। इनको महापुरुष कहते हैं, आचार्य कहते हैं। आचार्य वे हैं जो दूसरों के मन को ईश्वर के मार्ग पर चलाने का, सामर्थ्य रखते हैं।

एकाग्रता के बल से कर्कटी राक्षसी विकराल रूप धारण कर सकती थी। एक संध्या के समय उसे किरात देश के राजा और वजीर मिले। कर्कटी ने डरावना रूप धारण किया, यह सोचकर कि देखें, ये डर जाते हैं कि नहीं। पामर होंगे, पापी होंगे, चित्त में परमात्म-प्रसाद नहीं होगा तो डर जायेंगे। जिनके चित्त में प्रसन्नता है, जिनके चित्त में तप है वे नहीं डरते।

कर्कटी ने विशाल काले बादल की तरह विकराल रूप धारण किया। बड़े-बड़े नेत्र, विशाल भुजाएँ, डरावना चेहरा। कट-कट शब्द करती हुई वह राजा के पास आयी।

राजा ने कहाः "बोल राक्षसी ! तूने ऐसा डरावना रूप धारण किया है, तेरा क्या प्रयोजन है? अपना प्रयोजन ऐसे ही सिद्ध हो जाता हो तो बुद्धिमान लोग परीश्रम नहीं करते। तू क्या चाहती है?"

कर्कटीः "मैं चाहती हूँ कि तुम्हारा भक्षण करूँ। कई दिनों से मैंने भोजन नहीं किया है। तुम लोग मेरे ग्रास हो। अगर तुम ज्ञानी हो तो मैं तुम्हारी सेवा करूँगी, तुम्हें प्रणाम करूँगी। यदि तुम अज्ञानी मूढ़ होगे तो मैं तुम्हें खा जाऊँगी। मेरे प्रश्नों का मुझे उत्तर मिलेगा तो मैं मानूँगी कि तुम ज्ञानवान हो। उत्तर नहीं मिला तो तुम अज्ञानी सिद्ध होगे।"

"ऐसा कौन सा चिदअणु है जिससे सारी सृष्टि उत्पन्न हुई है? ऐसा कौन सा तत्त्व है जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है और महान से भी महान है? ऐसा कौन सा चिदअणु है जिसके एक भाग में अनन्त अनन्त ब्रह्माण्ड छुपे हुए हैं? इस प्रकार के 72 प्रश्न किये।

राजा ने उत्तर दियाः "हे कर्कटी ! ये सब प्रश्न तूने एक परमात्मा के बारे में ही पूछे हैं। परमात्मा से ही सारी सृष्टि उत्पन्न हुई है। परमात्मा ही सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान से महान है। उसी के एक भाग में अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्ड छुपे हुए हैं।"

इस प्रकार राजा ने ठीक उत्तर दिये। कर्कटी प्रसन्न हुई और राजा से मैत्री कर ली। राजा उसको अपने राज्य में ले गया। जिनको फाँसी देनी थी ऐसे जो पापी जेल में सड़ रहे थे वे सब कर्कटी को सौंप दिये। कर्कटी उन्हें जंगल में ले जाकर खा गई। जब-जब उसको भूख लगती तब-तब वह राजा के पास आती, ज्ञानचर्चा करती और बाद में राजा उसे राज्य के पापी आदमियों को भक्षण के निमित्त सौंप देता। कर्कटी पापियों को लेकर जंगल में ले जाती और भोजन करके आराम करती। इस प्रकार वह राजा के पास आती-जाती रहती। समय आने पर कर्कटी का प्रारब्ध पूरा हुआ, आयुष्य खत्म होने को आयी। वह हिमालय के एकान्त में चली गई। समाधि लगायी और नाशवान् देह को छोड़कर अविनाशी परम पद में लीन हो गई।

राजा ने सोचाः "कर्कटी कई दिनों से आयी नहीं। शायद देह छोड़ दिया होगा। वह राक्षसी थी लेकिन थी आत्मज्ञानी। प्रजा यदि उसका आदर करेगी तो सुखी रहेगी। जिसने आत्मज्ञान पाया है उसका आदर करने वाले का प्रेम बढ़ता है, ज्ञान बढ़ता है, भक्ति बढ़ती है, यश बढ़ता है। ज्ञानवान का अनादर करने वाली प्रजा का अनादर होता है, उसको दुःख मिलता है, परेशानी होती है, अपकीर्ति मिलती है और जीवन में संघर्ष होता है। ज्ञानवान का आदर करने से भाग्य उज्जवल होता है और ज्ञानवान का अनादर करने से भाग्य रूठता है, दुर्भाग्य शुरु हो जाता है।

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।
जहाँ कुमति वहँ बिपति निदाना।।

हमारी प्रजा आत्मज्ञानी कर्कटी का आदर, मान, पूजा करेगी तो उसका मंगल होगा क्योंकि कर्कटी परम मंगलस्वरूप परमात्मा में जगी थी। इसलिए राजा ने कर्कटी की याद में दो मंदिर बनवाये। एक मंदिर में कर्कटी की प्रतिमा स्थापित करके उसका नाम हिंगला देवी रखा। हूँकार करके वह पापियों का मनोबल नष्ट करती थी इसलिए नाम रखा हिंगलादेवी। दूसरे मंदिर में स्थापित प्रतिमा का नाम रखा मंगलादेवी, क्योंकि ज्ञानहीन, मूढ़, पापियों का भक्षण तो करती थी लेकिन उनका मंगल भी करती थी।

कर्कटी जैसी राक्षसी हिंगला देवी और मंगलादेवी होकर पूजी जाती है। इसका मूल कारण देखा जाय तो एकाग्रता ही है।

अनुक्रम

भक्तों की एकाग्रता

जो ध्रुव पिता की गोद में बैठने लायक नहीं था, सौतेली माँ की थप्पड़ खायी, वही ध्रुव अब लाखों लोगों के दिलों में बैठा हुआ है। इसके पीछे भी एकाग्रता ही तो कारण है। प्रह्लाद का पिता उसको इतने कष्ट देता है फिर भी प्रह्लाद को दुःख नहीं होता। इसके पीछे भी प्रह्लाद की दृढ़ धारणा की ही चमत्कार है। तपे हुए लोहे के खंभे को आलिंगन करते ही नृसिंह भगवान का प्रागट्य हुआ यह प्रह्लाद की एकाग्रता का ही चमत्कार है। मीरा को राणा ने जहर दिया लेकिन मीरा ने उसमें एकाग्रतापूर्वक अमृत की धारणा की तो वह अमृत हो गया।

शंकराचार्य जी की बात हमें अक्षरशः अपने हृदय पटल पर अंकित करनी होगी कि मन और इन्द्रियों की एकाग्रता ही परम तप है। उनका जय सब धर्मों से महान है। एकाग्रता जैसी तपस्या विश्व में और कोई नहीं है। जिसने अपने मन-इन्द्रियों पर विजय पायी, समझो उसने सारे विश्व पर विजय पायी।

अनुक्रम

व्यवहार में एकाग्रता

इन छोटे-छोटे दृष्टान्तों से सिद्ध होता है कि एकाग्रता बहुत जरूरी है। नौकरी धन्धे में, परीक्षा-प्रमोशन में एकाग्रता से सफलता मिलती है। एकाग्रता जैसा मित्र विश्वभर में अन्य कोई नहीं है। लाख शत्रुओं ने घेर लिया हो और आपके पास एकाग्रता का बल है, तप का बल है तो शत्रु आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। आपके शरीर अथवा यश में विक्षेप होना अगर प्रारब्ध में है और यदि आप एकाग्र और अनासक्त होंगे तो आपके चित्त में क्षोभ नहीं होगा। आपके हजारों मित्र हैं लेकिन आपका मन व इन्द्रियाँ चँचल हैं तो आप मित्रों के बीच होते हुए भी परेशानी का अनुभव करेंगे। लोगों ने आपको क्रॉस पर चढ़ाया, शूली पर चढ़ाया लेकिन आपके पास एकाग्रता का खजाना है तो आप भीतर गोता मारकर सार तत्त्व में विश्रांति पा लेंगे। लोगों की नजरों में तो आप शूली पर होंगे लेकिन सचमुच में आप परमात्मा में होंगे।

हमारे पास एकाग्रता नहीं है तो हम होते मंदिर में हैं लेकिन मन और इन्द्रियाँ हमें कहाँ-कहाँ ले जाते हैं यह हम भी नहीं जानते। यदि एकाग्रता है तो महाराज ! आप मंदिर में न हो, बाजार में हो तभी भी आप जिस क्षण चाहो उसी क्षण परमात्मा में हो सकते हो।

अनुक्रम

रमण महर्षि की एकाग्रता

रमण महर्षि ने इसी एकाग्रता के प्रभाव से भीड़-भड़ाके में भी अपने अद्वैत तत्त्व में विश्रांति पायी थी। दूसरों को भी इसका आस्वाद कराया। कभी तो जिस खण्ड में बैठते थे उसमें दीवार की ओर बिना पलकें गिराये एकाग्रता में डूबे रहते और अद्वैत तत्त्व का आनन्द लेते। इस प्रकार आनन्द लेते-लेते कभी किसी भाग्यवान साधक पर दृष्टि घुमाकर देखते और उसको भी आनन्द में सराबोर कर देते। अरुणाचल प्रदेश में स्थित छोटी-सी पहाड़ी के पास रहते हुए भी देश व परदेश के लोगों के चित्त तक उनके प्रति आदर पहुँच गया। इसमें भी एकाग्रता ही तो काम आयी।

अनुक्रम

एकाग्रता और वेदान्त

जो लोग वेदान्त के मार्ग पर जाते हैं उनको कभी-कभी ऐसी धारणा हो जाती है कि जब सब एक ही है, सब परमात्मा ही है, ब्रह्म ही तो फिर ध्यान क्या करना? त्राटक क्या करना? एकाग्रता क्या करना? फिर मन में जैसा आये वैसा खायें-पियें, जैसा मन में आये वैसा करें। नहीं, नहीं। ऐसे लोगों से विनती है कि पहले एकाग्र हो जाओ फिर तत्त्व का साक्षात्कार करो। तत्त्वचिंतन करते वक्त भी एकाग्रता होगी तो तत्त्वचिन्तन सफल होगा, अन्यथा तो तत्त्व की खाली सूचनाएँ होगी। तत्त्व का आनन्द नहीं आयेगा।

एकाग्रता में त्राटक, आत्मविचार, एकान्त और शुद्ध आहार मदद देता है, साधु-संगति मदद देती है। एकाग्र होने के लिए, मन-इन्द्रियों को संयत करने के लिए जो उपाय करने पड़े वे अवश्य करने चाहिए। बुद्धि का प्रसाद तभी मिलता है जब आदमी एकाग्र होता है। परमात्म-प्रसाद का अनुभव तभी होता है जब आदमी एकाग्र होता है।

मनमानी एकाग्रता आसुरी भाव में मुड़ सकती है। गुरुमुख होकर एकाग्र हो तो वही एकाग्रता परमात्म-भाव में परिणत होती है, तत्त्व साक्षात्कार में परिणत होती है।

अनुक्रम

इन्द्र और विरोचन

एक बार देवराज इन्द्र ने सोचाः "सुना है कि आत्मज्ञान से बढ़कर और कोई ज्ञान नहीं। जब तक आत्म-साक्षात्कार नहीं किया तब तक असुरों के दुःख से बच नहीं सकते। **आत्मलाभात् परं लाभं न विद्यते।** यह लाभ प्राप्त करने के बाद हम चैन से जी सकते हैं। लोग हमें कहते देवता और इन्द्रदेव लेकिन हमारे पीछे लगे हुए असुर हमारे लिए बेचैनी पैदा कर रहे हैं। हम उनका कुछ नहीं करते फिर भी वे हमें सताते हैं। हम आत्मज्ञान प्राप्त करके ऐसी ऊँचाई पर पहुँच जायें

जहाँ असुरों की पहुँच न हो। हमने सुना है कि जिसने आत्मज्ञान पाया है वह एक साथ ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश के पद का भाग सकता है। उस पर जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधि का प्रभाव नहीं पड़ता है। वह अनन्त ब्रह्माण्डों में व्यापक हो जाता है। आत्मज्ञान के आगे दैत्यों का भी प्रभाव नहीं, किसी पद का भी प्रभाव नही है। ऐसा परम आत्मधन हम पायेंगे।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।।

(भगवदगीताः 6.22)

'जिस लाभ को प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं माना जाता और जिस अवस्था में स्थित योगी बड़े भारी दुःख से भी चलायमान नहीं होता, ऐसे आत्मलाभ में हम स्थिर होंगे।'

देवों के बीच ऐसा विचार-विमर्श हुआ। असुरों के गुप्तचर देवों के पीछे लगे हुए थे। शत्रु हमेशा सामने वाले पक्ष में क्या होता है यह जानने के लिए सक्रिय रहते ही हैं। असुरों को पता चला कि, "सबसे बड़ा आत्मज्ञान है, उसको पाने के लिए देवता लोग तैयारी कर रहे हैं। जिस ज्ञान को पाने के बाद आदमी को दुःख नहीं होता वह ज्ञान पाकर फिर हम युद्ध करेंगे तो हमको भी दुःख नहीं होगा। देवताओं को पराजित करने के लिए हम ब्रह्माजी के पास जाकर पहले आत्मज्ञान ले जायेंगे। उसी आत्मज्ञान के बल से उन सबको कुचल डालेंगे।"

असुरों का राजा विरोचन और देवों का राजा इन्द्र, इन दोनों आगेवानों ने सोचा कि पहले हम आत्मज्ञान पा लें, बाद में अपनी प्रजा को आत्मज्ञानी बना देंगे। वे दोनों गये ब्रह्माजी के पास।

अन्तर्यामी ब्रह्माजी ने दोनों के आगमन का कारण तो जान लिया फिर भी उनकी ओर ध्यान न दिया। चुप बैठे रहे। दोनों ने आकर प्रणाम किया और बोलेः

"ब्रह्मन् ! हम शिष्यभाव से आपको प्रणाम करते हैं। आपकी शरण आये हैं, हमें स्वीकार करो।"

बत्तीस वर्ष तक वे ब्रह्मचर्यव्रत धारण करके ब्रह्माजी के चरणों में रहे और सेवा-सुश्रूषा की। ब्रह्माजी ने देखा कि इन्होंने ब्रह्मचर्यव्रत का पालन किया है। इनकी बुद्धि सूक्ष्म हुई होगी, तेजस्वी होगी। अब इनको थोड़ा-सा उपदेश दूँगा तो वे ज्ञान को उपलब्ध हो जायेंगे।

जिनकी बुद्धि विषयों में भटकती है उनको बार-बार उपदेश की जरूरत पड़ती है। जिनकी बुद्धि सूक्ष्म है उनको थोड़ा-सा उपदेश भी पर्याप्त हो जाता है। ज्ञान होने के बाद भी सहज स्वभाव वेदान्त श्रवण करते रहें यह अलग बात है।

ज्ञान जल्दी इसलिए नहीं होता कि एकाग्रता नहीं है, बुद्धि सूक्ष्म नहीं है। बुद्धि इसलिए सूक्ष्म नहीं होती कि बुद्धि में संसार का राग-द्वेष भरा है। इससे बुद्धि मलिन हो जाती है, अपवित्र हो जाती है।

ब्रह्माजी ने दोनों को बुलायाः "तुम लोग किसलिये आये हो?"

"ब्रह्मन् ! हम आत्मज्ञान पाने के लिए आये हैं जिससे बढ़कर अन्य कोई चीज नहीं है।"

एकाग्रता भावों के आवेग को रोकती है। भक्ति में लोग भाव के आवेग में आ जाते हैं। ठूँठ हृदय से तो भावों के आवेग में आनेवाला ठीक है लेकिन तत्त्वज्ञान के आगे वह भावावेग कुछ नहीं है।

जिन पर गुरुकृपा बरसती है, कुण्डलिनी जागृत होती है और कीर्तन में झूमते हैं उनमें अगर समझ नहीं है, एकाग्रता नहीं है तो जो आध्यात्मिकता का रंग लगा है वह जहाँ कहीं प्रदर्शित करके खत्म भी कर देते हैं। आत्मविद्या या कुण्डलिनी योग की विद्या प्रदर्शन के लिए नहीं है बल्कि पचाने के लिए हैं।

संसारी आदमी चार पैसे कमाता है तो न जाने क्या-क्या खाते बनाता है। एक नंबर, दो नंबर, बेटे के नाम से, बेटी के नाम से, पत्नी के नाम से, देश में, परदेश में विभाजित करके धन छुपा लेता है। सांसारिक तुच्छ वस्तुएँ सँभालने के लिए लोग युक्तियाँ आजमाते हैं तो यह आध्यात्मिक खजाना तो विवेकपूर्वक ही सँभालना चाहिए। कहाँ पूरी मस्ती में आकर मुक्त रीति से झूमना और कहाँ मस्ती संयत कर लेना यह सावधानी से समझ लेना चाहिए।

ब्रह्माजी ने सोचाः 'अब इनका बेड़ा पार हो जाये। ये लोग भले ब्रह्माजी नाम धारण न करें लेकिन मैं ब्रह्माजी जिससे ब्रह्माजी हूँ ऐसे वे ब्रह्ममय हो जायें।'

ब्रह्माजी ने कृपा करके उन्हें ब्रह्मज्ञान का उपदेश देना प्रारम्भ कियाः

"हे सुरनायक और असुरनायक ! सुनो। यह जो दिखता है वह सब ब्रह्म है। वह शुद्ध है, शांत है, आनन्दघन है। वही ब्रह्म परमात्मा प्राणिमात्र का आधार है। वही ब्रह्म परमात्मा मेरा, विष्णुजी की, महादेवजी का, कीड़ी का, कुंजर का, सबका आधार है। वही तुम्हारी आँखों से देख रहा है, जिसको पाये बिना जीव अभागा रह जाता है और जिसको पाने के बाद जीव शिवस्वरूप हो जाता है। यह ब्रह्मविद्या ही सार है और कुछ सार नहीं। तुम लोग भाग्यवान् हो कि ब्रह्मविद्या के लिए आये हो। ब्रह्मविद्या सुनने की भी पात्रता चाहिए। बत्तीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए यहाँ रहे हो, मालूम होता है कि तुमको ब्रह्मविद्या के मूल्य पता है। लेकिन बुद्धि में अगर कल्मष है, बुद्धि में अगर द्वेष और शत्रुता छुपी है तो वह ब्रह्मविद्या पाने में रूकावट हो जायेगी। यहाँ आते समय रास्ते में दोनों परस्पर मिले हो लेकिन एक सुर और एक असुर सी शत्रुता की गाँठ तुम्हारी बुद्धि में है। वह गाँठ बुद्धि के चमत्कार को प्रगट करने नहीं देगी। अतः शत्रुता की गाँठ को बढ़ने मत दो। द्वेष ठीक नहीं।"

अनुक्रम

द्वेष की गाँठ मत बाँधो

मुझे एक महात्मा बताया करते थेः "हमारे गुरुजी मुझसे कहते थे कि बेटा ! मन में आये तो किसी को दो गाली दे देना लेकिन मन में गाँठ मत बाँधना। ऐसी कुछ बात हो जाय तो ठपका दे देना, तमाचा मार देना लेकिन किसी भी व्यक्ति के प्रति चित्त में द्वेष की गाँठ मत बाँधना।"

द्वेष की गाँठ अपने चित्त को मलिन कर देती है। जो कलह, झगड़े, परेशानियाँ होती हैं वे द्वेष की आग के कारण ही होती हैं। ऐसा नहीं कि परेशान करने वाला व्यक्ति दूसरे को ही परेशान करता है। नहीं.... वह बेचारा स्वयं भी परेशान होता है। जहर तो जो पीता है उसका खाना खराब करता है, जिस बोतल में पड़ा है उस बोतल का पहले सत्यानाश करता है और फिर जिस पर उड़ेला जाता है उसका सत्यानाश करता है। दोनों पक्षों की हानि होती है, फिर चाहे पति-पत्नी का द्वेष हो, राजा-राजा का द्वेष हो, व्यापारी-व्यापारी का द्वेष हो, साधक-साधक का द्वेष हो चाहे सुर-असुर का द्वेष हो। द्वेष सात्त्विक प्रकृति के व्यक्तियों के बीच का हो चाहे राजसिक-तामसिक प्रकृति के व्यक्तियों के बीच का हो, वह खाना खराबी करता है, कोई फायदा नहीं करता।

ब्रह्माजी इन्द्र और विरोचन से कहते हैं- "अगर तुममें द्वेष न होगा तो तुम मेरा थोड़ा-सा उपदेश भी समझ जाओगे। आँखों में जो दिखता है वह परब्रह्म है।"

ब्रह्माजी ने सोचा कि ब्रह्मभाव में आकर मैंने ये वचन कहे हैं। मेरे इन वचनों को ही याद करेंगे, दोहरायेंगे, मनन करेंगे तो इनकी बुद्धि प्रकाशित हो जायेगी लेकिन विरोचन तो विरोचन ही था, मोटी बुद्धि का। जाकर पानी में देखा तो अपनी परछाई दिखी। किसी की आँख में देखा तो अपना प्रतिबिम्ब दिखा। आँखों में जो दिखता है वह ब्रह्म है। एक-दूसरे की आँखों में हम ही दिख रहे हैं तो हम ही ब्रह्म हैं। **देहो ब्रह्मः।** दिल में द्वेष की आग के कारण बुद्धि खुली नहीं थी। वह देह को ब्रह्म मानकर उलझ गया और अपनी प्रजा को भी उलझा दिया। शरीर को ही ब्रह्म मानकर अपने राज्य में जाकर प्रचार कर दिया। खाओ, पियो और मौज से जियो। मरने के बाद किसने क्या देखा है?

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।।

विरोचन का यह सिद्धान्त विदेशों में देखा जाता है। सुबह से शाम तक, जन्म से मौत तक जीवन का पूरा आयोजन, विकास और वैज्ञानिक आविष्कार, बुद्धिमानों की पूरी अक्ल होशियारी शरीर को सुख देने के लिए ही लगायी जा रही है। उनमें असुरों का सिद्धान्त फूला-फला है।

देवताओं का राजा इन्द्र सात्त्विक था। उसने सोचाः 'दिखता तो देह है, क्या देह ब्रह्म है?' जाकर ब्रह्माजी से पूछा तो वे खुश हुए कि इसने विचार का सहारा लिया है। बोलेः "अब इस देह को नहलाकर, सुन्दर वस्त्रालंकार पहनाकर आओ।"

इन्द्र वैसा होकर गया। ब्रह्माजी ने कहाः "अब अपना प्रतिबिम्ब पानी में देखो। क्या दिखता है?"

"अब मैं सजा-धजा, आभूषणों से विभूषित दिखता हूँ। पहले बिना आभूषण का था।"

"आभूषणवाला और बिना आभूषण का, इन दोनों को जो जानता है वह ब्रह्म् है। एकान्त में जाकर चिन्तन करो।"

चिन्तन व खोजबीन में समय बिताकर इन्द्र फिर ब्रह्माजी के पास आया। बोलाः "इन दोनों को देखता है मन।"

"मन को भी जो देखता है वह ब्रह्म है।"

सोचते-सोचते, खोज करते-करते विश्रांति नहीं मिली, साक्षात्कार नहीं हुआ। फिर वापस आकर बोलाः "हे भन्ते ! कृपानाथ ! कृपा करें। मुझे ब्रह्म-साक्षात्कार करा दीजिए, परमात्मा में विश्रांति प्राप्त करा दीजिए। इसके बिना जीव अभागा है। जब तक आत्म-साक्षात्कार नहीं होता तब तक मेरी इन्द्र पदवी भी तुच्छ है ऐसा मैंने समझा है। अब आपके शरण हूँ। कैसे भी हो, मुझे परमात्मतत्त्व का बोध करा दीजिए प्रभो !"

ब्रह्माजी के हृदय में प्रसन्नता हुई कि शिष्य अधिकारी है, ब्रह्मज्ञान का मूल्य समझता है। अपने जीवन व आत्मबोध का मूल्य समझता है। बोलेः "मन को जो देखता है वह ब्रह्म है। फिर से जा एकान्त में और खोज कर, चिन्तन कर।"

एकान्त में जाकर इन्द्र विचार करने लगा, देखने लगा कि कौन मन को देखता है। वह समाहित होने लगा। धीरे-धीरे इन्द्रियाँ मन में आ गईं। मन को कौन देखता है - यह प्रश्न करते-करते मन के संकल्प - विकल्प कम हो गये। इन्द्रियों का संयम हो गया, मन एकाग्र हो गया। मन संयत हुआ तो बुद्धि का प्रकाश होने लगा। मन की हरकतों को देखते-देखते उसका मन अमनीभाव को प्राप्त होने लगा। ऐसे गहरे चिन्तन में उतरते-उतरते इन्द्र इन्द्र न बचा। इन्द्र वही हो गया जिससे ब्रह्माजी ब्रह्माजी हैं।

ब्राह्मी स्थिति प्राप्त कर कार्य रहे न शेष।
मोह कभी न ठग सके इच्छा नहीं लवलेश।।
पूर्ण गुरु कृपा मिली पूर्ण गुरु का ज्ञान।
सुरपति इन्द्र हो गये स्वयं ब्रह्मप्रतिरूप।।

इन्द्र की सारी इच्छाएँ बाधित हो गयीं। वह ब्रह्म परमात्मा में प्रतिष्ठित हो गया।

अनुक्रम

उत्थान के लिए एकाग्रता

एकाग्रता सिद्ध करना कठिन है लेकिन इसका फल बड़ा अदभुत है। जीवन की कठिन समस्याओं को सुलझाने में एकाग्रता बहुत काम आती है। कठिन-से-कठिन जो जन्म मृत्यु की समस्या है उसकी कठिनता को भी एकाग्रता की तपश्चर्या का प्रभाव दूर कर देता है।

जो आदमी जहाँ गिरता है वहीं से उठता है। जहाँ फँसता है वहीं से छूटता है। हम लोग फँसे हैं नाम-रूप में। फँसे हैं मन के कारण, इन्द्रियों के कारण और छूटेंगे भी मन-इन्द्रियों को संयत करेंगे तभी। फँसे हैं नाम-रूप में, तो अवलम्बन भी लेंगे। परमात्मा के नाम-रूप का तो छूट जायेंगे।

बारिश में चलते-चलते पैर फिसल गया, आदमी गिर पड़ा। वह गिरा है बारिश के कीचड़ में तो उठेगा पलंग से थोड़े ही ! उठेगा भी तो उसी कीचड़ से। आदमी जहाँ गिरा है उसे वहीं से उठना होगा। हम लोग गिरे हैं शब्द में, स्पर्श में, रूप में, रस में, गंध में, मन के संकल्प और विकल्प में तो हमें उठना भी वहीं से होगा।

अनुक्रम

निष्ठा और एकाग्रता

वृन्दावन में एक ब्रह्मचारी था। वह रोज ध्यान करता था। फरियाद करता था कि मन नहीं लगता। एक बार बाबाजी उसकी कुटिया में जाकर बोलेः "तू रोज ध्यान करता है और शिकायत करता है कि मन लगता नहीं तो जरा देखने को आया हूँ कि क्या कारण है।"

बाबाजी ने देखा तो कुटिया में बीसों फोटो लगे हैं।

"इतने सारे चित्र ते रखे हैं? शिवजी का चित्र है, रामजी का है, काली का है, गणपति का है, अन्यान्य कई देवी देवताओं के हैं। तू किसकी पूजा करता है? किसका ध्यान करता है?"

ब्रह्मचारी बोलाः "थोड़ी देर इधर देखता हूँ, थोड़ी देर उधर देखता हूँ। तीन माला हनुमानजी की करता हूँ, दो माला भगवती की, पाँच माला शिवजी की, सात माला सियाराम की करता हूँ।"

बाबाजीः "इस जन्म में तो तेरी एकाग्रता सिद्ध नहीं होगी और हजार-हजार दूसरे जन्म लेकर भी इसी प्रकार करेगा तो भी तू कुछ नहीं पायेगा।"

जो आदमी जहाँ गिरा है वहीं अपने को गिरावट से बचाना है। हम लोग गिरे कहाँ हैं? गिरे हैं मन और इन्द्रियों में। बैठे हैं ध्यान में और संतान में, फिर इन्द्रियों की चंचलता?

अनुक्रम

बुद्ध और भिक्षुक

एक बार बुद्ध किसी ऊँचे गम्भीर विषय पर प्रवचन दे रहे थे। एकाएक रुष्ट होकर चल दिये। महापुरुषों का रोष बड़ी करूणा और कृपा का प्रसाद है। वे हमको अपना समझते हैं तभी डाँटते हैं, रूठते हैं, धमकाते हैं। पराये बच्चे को आप चॉकलेट दे सकते हैं लेकिन तमाचा नहीं मार सकते। अपने बच्चे को तमाचा भी मार सकते हैं।

बुद्ध ने भिक्षुकों को आध्यात्मिक तमाचा लगा दिया और रुष्ट होकर उठ गये। दूसरे दिन सब लोग बड़े ध्यान से सुन रहे थे तो बुद्ध का चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। मौका मिलने पर किसी भिक्षुक ने प्रश्न कियाः "हे भन्ते ! कल आप अति गहन विषय को समझाते-समझाते यकायक चुप हो गये। हम पर नाराज हो गये। स्वामी ! आप क्यों चुप हो गये थे?"

बुद्ध ने कहाः "मुझे सुनने वाला कोई था ही नहीं तो क्यों बैठूँ? मेरा समय फालतू का नहीं है। अगर तुम चिड़ियों की तरह इधर-उधर झाँकते रहोगे, तुम्हारे पास एकाग्रता नहीं है, ध्यान करने की योग्यता नहीं है तो हम ध्यान की बात क्यों बतायेंगे? हमने रहस्य को समेट लिया और चल दिये।"

मनमुख आदमी हजारों वर्षों तक मजदूरी करे फिर भी उसकी मजदूरी के परिणाम में मुक्ति नहीं मिलेगी। गुरुमुख आदमी केवल तीन-चार महीना गुरु के निर्देशानुसार एकाग्रतारूपी तपश्चर्या करे तो उसके जीवन की तमाम मुसीबतें, दरिद्रता, बेवकूफी और कल्मष दूर हो सकते हैं।

वह ब्रह्मचारी बीसों वर्षों से ध्यान-जप करता था, कथा करने भी जाता था। लोग उसके नाम का ढोल पीट देते ते कथा में भीड़-भड़ाका भी हो जाता था लेकिन मरने के बाद अथवा जीते-जी आपके चित्त की जितनी एकाग्रता होती है उतना ही आप संसार में अथवा ईश्वर के मार्ग में सफल होते हो।

अनुक्रम

एकाग्रता से रोगमुक्ति

अहमदाबाद से करीब 30-32 मील दूर वात्रक नदी के तीर पर उत्कण्ठेश्वर महादेव का मंदिर है। वहाँ एक योगी साधना करते थे। उनका परिवार डीसा में रहता था। मैं भी जब डीसा के आश्रम में रहता था तब वे एक बार वहाँ आये थे। उनको देखकर मैं क्षणभर शांत हो गया और फिर सत्संग में ही उनकी साधना के संबंध में कुछ बातें ऐसी निकलीं कि वे दंग रह गये ! 'बापू को यह सब कैसे पता चला !' उनका नाम था मणिभाई दवे। 80 साल की उम्र थी। उनको मेरे प्रति बड़ा आदर मान हो गया। उन्होंने मुझे अपने साधना के स्थान पर भी आमंत्रित किया था। उन्होंने बतायाः

"मैं तीन महीने के लिए कमरे में ध्यान करने बैठता हूँ। हर रोज ध्यान का समय बढ़ाते-बढ़ाते आखिर में तीन दिन तक लगातार एक ही आसन पर ध्यान लगाकर बैठना होता है। आखिरी दिनों में मैंने देखा कि मेरे शरीर का आधा हिस्सा पूर्णतया पक्षाघात (Paralysis) से ग्रस्त हो गया है। कमरे में मैं अकेला। हाथ पैर सुन्न हो गये। अस्सी साल की उम्र में पक्षाघात ठीक होना भी मुश्किल। फिर सोचा कि मैं ध्यान करता हूँ, एकाग्रता के मार्ग पर हूँ। चलो, और किसी चीज के लिए नहीं लेकिन अपने शरीर के स्वास्थ्य के लिए एकाग्रता की तपश्चर्या का जरा सा अंश खर्च कर लूँ।"

"ध्यान में बैठकर चित्त में संकल्प दुहराया कि मेरा यह पक्षाघात अभी ठीक हो जाना चाहिए। मेरे शरीर में बल आना चाहिए। थोड़ा-सा ध्यान किया और मैं बूढ़ा थोड़ी ही देर में उठ खड़ा हो गया। पक्षाघात मिट गया।"

लेकिन केवल पक्षाघात को ठीक करने के लिए ही एकाग्रता का तप नहीं है, चौरासी लाख जन्मरूपी जो पक्षाघात पड़े हैं उन सबका घात करने वाला वह एकाग्रता का तप है।

जो लोग अति चंचल मन के होंगे, निगुरे होंगे, बहिर्मुख होंगे उनको यह विषय जरा कठिन लगेगा। लेकिन जो समझदार होंगे, सगुरे होंगे, जो जीवन का मूल्य जानता होंगे वे लोग समझते होंगे कि आज ज्यादा तपश्चर्या हो रही है।

सारे धर्मों का, सारे कर्मों का, सारे रहस्यों का खजाना एकाग्रता में छुपा है। एकाग्रता लाने के कई तरीके हैं। जो लोग वेदान्त सुन लेते हैं और एकाग्रता की उपेक्षा कर देते हैं उन लोगों को वेदान्त की कोरी बातें याद रहेगी, वेदान्त का अमृत नहीं मिलेगा। जब वेदान्त का अमृत पाये हुए संतों के पास आते हैं तब समझ में आता है कि अरे, वेदान्त तो अब समझ में आ रहा है। ऐसे ही भक्ति की बातें सुनते हैं लेकिन भक्ति का अमृत नहीं मिलता। भक्ति के द्वारा जो एकाग्रता की ऊँचाई पर पहुँचे हैं ऐसे भक्तों के चरणों में पहुँचते हैं तब समझते हैं कि भक्तिरस का प्याला तो अब मिला। आज तक तो केवल झाँझ बजाते और ढोल पीटते रहे।

जो लोग एकाग्र नहीं हैं वे लोग बेसुर होकर झाँझ बजाते रहते हैं, रात्रि का जागरण करते-करते बीसों साल तक भक्ति करते रहते हैं। लेकिन जीवन में देखो तो कोई रहस्य खुला नहीं, कोई रस मिला नहीं। जिनको महापुरुष मिल गये और महापुरुष ने उनको एकाग्रता का तरीका बता दिया, उन्हें भक्ति का प्रारम्भ करते ही उसका रस मिलने लगा। ऐसे लोगों को भी आप जानते होंगे कि जो पच्चीस-पचास वर्ष से भक्ति करते हैं, रात रात भर भजन गाते हैं फिर भी उनके जीवन में कोई आध्यात्मिक ऊँचाई नहीं। ऐसे महापुरुषों को भी हम जानते हैं जो थोड़ा सा कुछ कह देते हैं वैसा होने लग जाता है। इसके पीछे एकाग्रता का बल है।

अनुक्रम

रैदास की एकाग्रता

संत रैदास ने यात्रियों को अपनी ओर से एक पैसा देते हुए कहाः

"तुम गंगा नहाने जा रहे हो। मेरा पैसा भी लेते जाओ। गंगाजी को अर्पण कर देना लेकिन यह शर्त है कि जब स्वयं गंगाजी साक्षात् आकर पैसा स्वीकार करें तब देना।"

वे यात्री गये। गंगास्नान आदि करके गंगा मैया से बोलेः "गगे माँ ! रैदास ने एक पैसा भेजा है। कहा है कि गंगाजी स्वयं स्वीकार करें तब देना। अब पैसा लेने के लिए आप प्रगट हों तो दें। जल में प्रवाहित नहीं करेंगे।"

इतिहास कहता है कि जल में से गंगाजी प्रकट हुई और रैदास का पैसा स्वीकार किया।

अनुक्रम

विक्रमादित्य की दृढ़ता

एक ब्राह्मण तप कर रहा था। सात यज्ञ पूरे किये लेकिन सूर्यनारायण प्रकट नहीं हुए। राजा विक्रमादित्य वहाँ से पसार हुए। ब्राह्मण का उतरा हुआ चेहरा देखकर पूछाः "हे भूदेव ! साधन-भजन के बाद, तपश्चर्या के बाद चेहरे पर मस्ती, शांति प्रसन्नता आनी चाहिए लेकिन आपके चेहरे पर ऐसी कोई रौनक नहीं?"

ब्राह्मणः "मैंने इतने वर्षों तक तप किया लेकिन इष्टदेव प्रसन्न नहीं हुए। आनंद नहीं आया।"

राजाः "तपश्चर्या में कुछ न कुछ गलती करते होंगे। तप करके फिर क्रोध करते होंगे। अथवा भीतर का निश्चयबल ठीक नहीं होगा। क्रोध से तप का नाश हो जाता है। निश्चयबल नहीं होता तो तप फलता नहीं। देखो, मैं हवन करता हूँ सूर्यदेव का साक्षात्कार करने के लिए। अगर शाम तक सूर्यदेव प्रकट नहीं होंगे तो अपनी गरदन उतारकर हवनकुंड में डाल दूँगा।"

शाम हुई। सूर्यदेव प्रकट नहीं हुए। राजा विक्रमादित्य ने उठायी तलवार और अपनी गरदन काटने के लिए ज्यों ही वार करने को तत्पर हुए कि तुरन्त सूर्यदेव प्रकट हो गये और राजा का हाथ पकड़ लिया। राजा की दृढ़ता के कारण उनको प्रकट होना पड़ा। धन्ना जाट की दृढ़ता के कारण सिलबट्टे में से ठाकुर जी प्रकट हो गये। प्रह्लाद का दृढ़ निश्चय था तो सर्वव्यापक विष्णुजी तप्त लोहे के खम्भे में से प्रकट हो गये।

जितनी हम लोगों में दृढ़ता होती है उतना हमारा इष्ट व्यक्ति, इष्ट वस्तु, इष्टमेव अथवा इष्टकार्य सिद्ध होता है।

अनुक्रम

दृश्य से अदृश्य की ओर

एकाग्रता साधने के कई उपाय हैं। जैसेः हम छत पर सोये हैं। पलकें गिराये बिना चाँद को निहारते-निहारते लेटे हैं। कुछ समय के बाद एक के बदले दो चाँद दिखने लग जायेंगे। फिर तीन दिखने लग जायेंगे। आँखे खुली होंगी और तीनों के तीनों अदृश्य भी हो जायेंगे। हम दृश्य में फँसे हैं। दृश्य को देखते-देखते हम अदृश्य में पहुँच जायेंगे। व्यक्त में फँसे हैं लेकिन व्यक्त को निहारते-निहारते हमारी चेतना अव्यक्त में चली जायेगी।

रमण महर्षि के पास ऐसी योग्यता थी। इसलिए भारत के प्रधानमंत्री जैसे व्यक्ति को उन्होंने ऐसी शांति दी कि वर्षों तक उनके द्वारा महर्षि की प्रशंसा के गीत गाये गये। भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री मोरारजीभाई देसाई देश-विदेश में अपना यह अनुभव कहा करते थे किः "मैं कलेक्टर से लेकर प्रधानमंत्री तक के पद पर रहा लेकिन रमण महर्षि के चरणों में जो सुख-शांति मिली वह किसी पद के भोग में नहीं मिली।"

रमण महर्षि के चित्त में जो अव्यक्त का आनन्द छा जाता था वह एकाग्रता के द्वारा सारी सभा को भी मिल जाता था।

कभी दीये की जलती लौ पर पलकें गिराये बना देखते जाओ। भूत-प्रेत को देखने के लिए भी लोग लौ का उपयोग करते हैं। लेकिन तुम भूत-प्रेत के चक्कर में मत पड़ना। उसमें कोई सार नहीं।

लौ को निहारते जाओ... निहारते जाओ, फिर आँखे बन्द कर दो तो वही लौ ललाट में दिखेगी। थोड़ी देर के बाद वह अदृश्य हो जायेगी। आँखें खोलकर फिर से लौ को निहारो। ऐसे भी एकाग्रता बढ़ती है।

ऊपर नीचे के दाँतों के बीच जिह्वा के अग्र भाग को रोक दो। मुँह ऐसे बन्द करो कि जिह्वा न ऊपर तालू में लगे न नीचे लगे। मुँह के अवकाश में टिक जाये। ऐसा करके जिह्वा को मन से निहारते जाओ... निहारते जाओ। इससे भी एकाग्रता में मदद मिलेगी।

घड़ी का काँटा सेकण्ड-सेकण्ड करके घूम रहा है। इस काँटे को देखते हुए सेकण्डों को गिनते जाओ। इससे भी एकाग्रता की साधना हो सकती है।

मन में विचार चल रहे हैं। एक विचार उठा और गया। दूसरा अभी उठने को है। इसके बीच की जो निर्विचार अवस्था है उसको बढ़ाते जाओ तो तुरन्त साक्षात्कार का स्वाद आने लगेगा। दो विचारों के बीच की जो मध्यावस्था है उसको बढ़ाते जाओ तो चन्द दिनों में ऐसी ऊँचाई को पा लोगे की तुम्हारे आगे इन्द्र का राज्य भी कुछ नहीं लगेगा।

कभी तुम नदी, सरोवर या सागर के तट पर बैठे हो तब पानी को निहारते-निहारते चित्त को एकाग्र करो। कभी घर में ही त्राटक का अभ्यास करो। दीवार पर लगे हुए काले गोलाकार के बीच पीले बिन्दु को निहारते जाओ.... निहारते जाओ। आँखों की पलकें न गिरें। जब तक आँखों

से पानी न गिरे तब तक निहारते जाओ। दिनोंदिन अभ्यास बढ़ाते जाओ। कुछ ही दिनों में शक्ति आने लगेगी। सामर्थ्य का एहसास होगा। उस शक्ति या सामर्थ्य को पढ़ाई में खर्च करो, धन्धे में खर्च करो, कहीं भी खर्च करो लेकिन हम तो चाहते हैं कि उस शक्ति को शक्तिदाता परमात्मा के साक्षात्कार के लिए खर्च करके तुम उसको पा लो।

अनेक प्रकार के प्रयोग हैं जिनके अभ्यास से तुम सर्वोच्च तपस्या में सफल हो सकते हो। सारी सृष्टि का जो आधार है वह भी एकाग्रता से प्राप्त हो सकता है। महावीर इतने एकाग्र हो गये कि कानों में कीलें लगाई गईं फिर भी उनके चित्त में क्षोभ न हुआ। यह एकाग्रता का ही प्रभाव है कि क्षत्रिय राजकुमार वर्धमान, भगवान महावीर होकर पूजे जा रहे हैं।

हर व्यक्ति ऊँचा होना चाहता है, हर इन्सान अदभुत होना चाहता है, सबसे निराला होना चाहता है लेकिन जिससे निराला बना जाता है उस पर ध्यान नहीं है।

एकाग्रता साधने के लिए ध्यान की भिन्न-भिन्न रीतियाँ अपनायी जाती हैं। अपने मूलाधार चक्रपर चित्त एकाग्र करने से कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती है। काम का केन्द्र राम में बदल सकता है, भय निर्भयता में, घृणा प्रेम में, हिंसा अहिंसा में, स्पर्धा समता में बदल सकती है।

बार-बार किसी रूप को निहारते-निहारते उसी में चित्त को एकाग्र किया जाता है। गुरु, गोबिन्द, भगवान जो भी रूप प्यारा लगे उसको देर तक एकटक निहारते-निहारते आँखें बन्द करके भ्रूमध्य में उसी रूप को देखा जाये। ऐसा अभ्यास करने वाले साधक भी अदभुत सिद्धियाँ और सामर्थ्य पा सकते हैं। किसी रोग को निवृत्त करने के लिए इसी प्रकार एकाग्र होकर बार-बार संकल्प करने से रोग निवृत्त होते हैं। जन्म-मृत्यु का भवरोग निवृत्त करने के लिए एकाग्रता का उपयोग साक्षीभाव में किया जाता है।

भक्तों की भक्ति, जपी का जप, योगी का योग तब फलता है जब एकाग्रता होती है। भोगी को भी सफलता तब मिलती है जब कुछ घड़ियों के लिए, कुछ समय के लिए वह एकाग्र होता है।

अनुक्रम

रामचन्द्रजी की समता

भगवान राम के प्रति भरतजी का अथाह प्यार था। जब रामचन्द्रजी वनवास चले गये तब भरत जी मामा के घर से लौटे। देखा कि माता कैकेयी ने मंथरा के चक्कर में आकर न माँगने जैसा वर माँग लिया है, न करने जैसा कार्य राज्य में करवा लिया है। जैसे भी हो, अब रामजी को वापस लाना है।

भरतजी दौड़े वशिष्ठजी के पास। प्रार्थना की कि, "महाराज ! रामचन्द्रजी इतने विनम्र हैं, आपके इतने आज्ञापालक हैं कि आपका वचन टाल नहीं सकेंगे। अतः हे प्रभो ! हजारों अयोध्यावासियों को ध्यान में रखते हुए, मेरे जीवन और मृत्यु को ध्यान में रखते हुए, भावी इतिहास को ध्यान में रखते हुए कृपा करके अपना आदेश रामजी के ऊपर चलाइये ताकि वे वापस अयोध्या लौट आयें। हमें विश्वास है कि वे आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करेंगे।"

वशिष्ठजी महाराज भरत के कन्धे पर हाथ रखकर स्नेहपूर्ण वचन बोले कि, "भरत ! तू ठीक कहता है, ठीक जानता है लेकिन मेरी बात भी समझ। मैं आज्ञा करूँगा तो वे वनगमन नहीं करेंगे लेकिन बेटा ! वे तो मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। लोगों को वे सिखाना चाहते हैं कि अगर कष्ट सिर पर आ जाय तो भी अपना ब्रह्मभाव, अपनी उच्च आत्मशांति नहीं त्यागनी चाहिए। दुःखद परिस्थितियों में भी नम्रता और ऋषि मुनियों के दर्शन नहीं त्यागेंगे। प्रेम का प्रसार करते-करते जीवन जियेंगे, काँटे, कंकड़ और पत्थरवाले जंगली रास्ते में चलते-चलते, वन के हिंसक पशुओं का मुकाबला करते-करते समचित्त होकर चौदह वर्ष व्यतीत करेंगे तो अन्य जीवों को भी जीने की कुछ कला आ जायेगी। रामचन्द्रजी के वनवास में भी जगत की कुछ भलाई निहित है। अतः हे भरत ! उनको वापस लाने का आग्रह छोड़ो।

वशिष्ठजी महाराज एवं रामचन्द्रजी के सान्निध्य सेवन के बाद भी भरतजी में ममता रही है लेकिन रामचन्द्रजी में वह ममता नहीं है कि 'मेरा राज्य... मेरा भरत... माता कैकेयी ने ऐसा किया वैसा किया..... आदि'। उनमें राग-द्वेष नहीं उत्पन्न होता क्योंकि वे अपने ब्रह्मस्वभाव में प्रतिष्ठित हैं।

दूसरे दिन राज्याभिषेक होने वाला है, उसकी तैयारी में शास्त्रोक्त विधि अनुसार व्रत रखा है, कन्दमूल का आहार लिया है, भूमिशयन किया है, शहनाइयाँ बज रही हैं, सुबह राज्याभिषेक होने के बजाय वनवास मिला है फिर भी चित्त में क्षोभ नहीं होता, यह ब्रह्मभाव का प्रभाव है। इस परमावस्था को प्राप्त करने के लिए एकाग्रता अत्यंत उपयोगी है।

[अनुक्रम]

सामर्थ्य का सदुपयोग

एक बार वशिष्ठजी के शिष्य आये और बोलेः "गुरु महाराज ! आप बहुत विद्यायें जानते हैं। आपके पास तपस्या की बहुत सारी शक्तियाँ हैं। जो लोग आपकी निन्दा करते हैं, आपके खिलाफ कुछ की कुछ अफवाहें उड़ाते हैं ऐसे लोगों को शाप क्यों नहीं दे देते कि उनका सत्यानाश हो जाये?"

वशिष्ठजी ने कहाः "नहीं, नहीं...। एकाग्रता का, तपश्चर्या का या ज्ञान का फल निन्दकों का सत्यानाश कर देना नहीं है। ज्ञान का फल अज्ञानी के दिल में ज्ञान का दीया जलाना और

एकाग्रता का फल है कि चंचल व्यक्ति को एकाग्रस्वरूप परमात्मा में प्रतिष्ठित कर देना। मैं उस शक्ति का अपव्यय इन तुच्छबुद्धि निन्दकों को शाप देने में नहीं करूँगा।"

ज्ञानेश्वर महाराज, तुकाराम महाराज आदि के विषय में लोगों ने कुछ की कुछ अफवाहें उड़ायी लेकिन उन महापुरुषों ने अपने चित्त में उसी परमात्मा के प्रसाद का ही मूल्य सँभाला। जगत और भगत का संघर्ष अनादि काल से चलता आ रहा है लेकिन सच्चे भक्त अपनी तपश्चर्या को, अपनी एकाग्रता को, अपने तत्त्वज्ञान को दूसरों के हृदयों में परमात्मा-रस भरने में लगाते हैं।

बालमंदिर में बच्चों को आकर्षित करने के लिए चॉकलेट, लॉलीपॉप दी जाती है। वे पढ़ते-पढ़ते पढ़ाई का मूल्य समझने लगते हैं, बड़े हो जाते हैं तब कॉलेज में फीस भरने पर भी उन्हें सरलता से प्रवेश नहीं मिलता। कहा जाता है कि अच्छे अंक लाओ तो प्रवेश मिलेगा। ऐसे ही आध्यात्मिकता के मार्ग में प्रारम्भ में अच्छे स्वास्थ्य और ऐहिक लाभ के आकर्षण दिये जाते हैं। बाद में जब साधक बनकर योग्यता का विकास होता है तो वह अपनी रूचि से ही आध्यात्मिकता में आगे बढ़ता रहता है।

प्रारम्भ में ध्यान कठिन लगता है लेकिन ध्यान सदा सदा की कठिनाइयाँ मिटाने की कुँजियाँ भी तो देता है। जीवन की तमाम प्रकार की कठिनाइयों को दूर करने का रास्ता ध्यान से मिलता है। अगर योगयुक्ति मिल जाय तो ध्यान सरल हो जाता है। सुपारी चबाना मुश्किल लगता है लेकिन सुपारी के साथ बादाम चबाया जाय तो सुपारी का कड़ापन गायब हो जाता है।

ऐसे ही बादामों की बादाम उस परमात्मा का रस मिलते ही मन का कड़ापन, चंचलता, कर्मों की जाल बुनने की आदत अपने आप मिट जाती है।

एकाग्र व्यक्ति हर क्षेत्र में सफल होता है। आद्य शंकराचार्य जी ने भी इसी एकाग्रता के बल से नर्मदा जी के बाढ़ को थाम लिया था। इसी एकाग्रता के बल से शास्त्रार्थ विजेता होकर अद्वैत सिद्धान्त का डंका बजाकर जीवों के हृदय में, साधक और भक्तों के हृदय में **अहं ब्रह्माऽस्मि** का प्रकाश प्रकटाया था। बुद्ध ने एकाग्रता के बल से ही लोगों को अन्तर्मुख करने में सफलता प्राप्त की थी।

एकाग्रता ऐसा अदभुत साधन है कि हर क्षेत्र में उसका सदुपयोग होता है। इसी एकाग्रता के बल से पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाहजी बापू ने पेड़ को आज्ञा कर दी तो पेड़ चलने लग गया था। इसी एकाग्रता के बल से ज्ञानदेव महाराज ने चबूतरे को आदेश दिया तो चबूतरा चल पड़ा था।

आज का श्लोग हमें एकाग्रता की ओर चलने के लिए प्रेरणा देता है। कुछ प्यारे साधक चलते-फिरते भी एकाग्रता का अभ्यास करते हैं, नासाग्र दृष्टि रखते हैं, ध्यान का अभ्यास करते हैं। बातचीत सुनते जाते हैं, जरूरी जवाब भी देते जाते हैं फिर भी अपनी दृष्टि को ज्यादा चंचल नहीं होने देते। इससे उनकी इन्द्रियाँ संयत होकर आत्मप्रसाद की ओर बढ़ती हैं।

अनुक्रम

श्रवण में एकाग्रता

हरिबाबा एक महान संत हो गये। आनंदमयी माँ के मित्र संत थे। वे किसी पण्डित के घर सत्संग सुनने जाते थे। एकाग्रता से सत्संग सुनकर लौट आया करते थे। एक दिन उनका शिष्य साथ में गया। वापस आने पर बोलाः

"पण्डित जी कथा सत्संग बढ़िया करते हैं लेकिन उनके घर में बहुत से दुशाले, चद्दरें, हार आदि खूँटियों पर टँगे हुए हैं।"

हरिबाबा ने कहाः "भैया ! मैं चार महीने से जाता हूँ। कथा सुनता हूँ। मैंने तो नहीं देखा कि दुशाला टँगा है कि हार टँगा है। तूने एक ही दिन में यह सब देख लिया। तू कथा सुनने गया था कि खूँटियाँ देखने गया था? मेरी तरह तू भी एकाग्र होकर कथा सुनता तो तेरे बीस साल बरबाद न होते। तू बीस दिन में भी बहुत कुछ यात्रा कर लेता। तेरी चंचलता ने तुझे सत्संग व मेरे सान्निध्य के लाभ से वंचित रखा।"

अनुक्रम

संत लीलातीर्थ

महात्मा लीलातीर्थ से पूछा गयाः "बाबाजी ! आप महान संत कैसे बने? आपके समीप बैठते ही हमारा चित्त पवित्र होने लगता है, हमारे चित्त की चंचलता मिटने लगती है। हमारी इन्द्रियाँ अन्तर्मुख होने लगती हैं। हमें प्रभु की याद आने लगती है। आप ऐसे महान कृपानिधान कैसे बने? आपको ऐसी ऊँचाई कैसे मिली?"

महात्मा ने जवाब दियाः "जब हम स्कूल में पढ़ते थे तबसे ऐसे संस्कार मिले थे कि हमने जगत के बजाय जगदीश्वर को ज्यादा महत्त्व दिया। सबसे जो बड़ा परमात्मा, उसका चिन्तन करने से उसने मुझे अपने में मिला लिया।"

जब लीलातीर्थ कॉलेज में पढ़ते थे तब प्रयोगशाला का कोई औजार किसी लड़की से टूट गया। सब लड़कियों ने मिलकर उस युवक पर झूठा आरोप लगा दिया। पचास रूपये जुर्माना हुआ। लीलातीर्थ ने जुर्माना भर दिया। साथियों को पता चला कि निर्दोष लीलातीर्थ को पचास रूपये भरने पड़े हैं। उन्होंने लीलातीर्थ से कहाः "हम सब जानते हैं कि तुम निर्दोष हो। तुम अर्जी करो और न्याय की माँग करो। हम तुम्हें हर प्रकार से सहयोग देंगे। जिन्होंने औजार तोड़ा है उनको हम जानते हैं, साबित भी कर सकते हैं। तुमको जिन्होंने बदनाम किया है, तुम पर कीचड़ उछाला है उनके षडयंत्र का खुलासा कर सकते हैं। हम सब गवाह, सबूत पेश करके तुमको निर्दोष सिद्ध करायेंगे और पचास रूपये वापस दिलवायेंगे।"

लीलातीर्थ ने कहाः "मित्रो ! धन्यवाद है। आप लोगों के स्नेह का आभारी हूँ। लेकिन मेरे पास इतना समय नहीं है कि मैं अपनी ध्यान की एकाग्रता तोड़कर इन बातों का चिन्तन करूँ।

मैं पचास रूपये बिगाड़ सकता हूँ लेकिन पाँच मिनट ऐसे नहीं बिगाड़ नहीं सकता। पचास रूपये चले जायें तो हरकत नहीं लेकिन ध्यान चला जायेगा तो अच्छा नहीं लगेगा। लोग मुझ पर आरोप लगा दें तो स्वीकार है लेकिन मैं परमात्मा से पृथक होकर आरोपियों का चिन्तन करके अपने चित्त को मलिन नहीं करूँगा।"

दुनियाँ के बड़े-बड़े उद्योगों की अपेक्षा दो क्षण परमात्मा में स्थित होने का उद्योग हजारों गुना ज्यादा हितकर है।

वही युवक लीलातीर्थ महान संत लीलातीर्थ बना। लाखों-करोड़ों रूपयों से और यश-पद-प्रतिष्ठा-सत्ता से जिन्होंने परमात्मा का मूल्य ज्यादा जाना है ऐसे बुद्ध, महावीर, सम्राट अशोक, राजा भर्तृहरि राजपाट को लात मारकर परमात्मा के प्रसाद के लिए एकान्त अरण्यों में चले गये और गुफाओं में रहे।

अनुक्रम

धर्म और एकाग्रता

भगवान शंकराचार्य कहते हैं कि मन और इन्द्रियों की एकाग्रता ही परम तप है। उनका जय सब धर्मों से महान है। क्षत्रिय धर्म, ब्राह्मण धर्म, संन्यास धर्म, गृहस्थ धर्म, ईसाई धर्म, इस्लाम धर्म, जैन धर्म, बोद्ध धर्म, वैष्णव धर्म आदि सब धर्मों से एकाग्रता का धर्म अधिक महान है। कोई वैष्णव है और एकाग्रता नहीं है तो उसकी वैष्णवता चमकेगी नहीं। वेदान्ती है लेकिन एकाग्रता नहीं है तो अव्यक्त तत्त्व का रस नहीं आयेगा। भीतर का रस नहीं आयेगा तो बाहर के रस में उलझ जायेगा। योग का साधक लेकिन एकाग्रता की यात्रा नहीं करता है तो योग का रस नहीं आयेगा और भोग के रस में मन गिर जायेगा।

एकाग्रता के द्वारा योगयुक्ति आ जाय तो योगाग्नि के द्वारा हमारे कर्म दग्ध होते हैं, हमारी चिन्ताएँ चूर-चूर होने लगती हैं, हमारा अहंकार विलीन होने लगता है। नासमझी से अहंकार टिका है। अगर आत्मविचार में एकाग्रता आयी तो अहंकार का कोई मूल्य नहीं रह जाता।

अनुक्रम

अनन्त का अनुसन्धान

श्रीमद् राजचन्द्र ने कहा हैः

देह छत्तां जेनी दशा वर्ते देहातीत।
ते ज्ञानीना चरणमां हो वन्दन अगणित।।

देह में होते हुए भी जो देह से परे हैं, देह को जो सत्ता स्फूर्ति देता है ऐसे परात्पर ब्रह्म में जो परिनिष्ठ हैं ऐसे महापुरुषों के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन हो।

एक व्यक्ति की विद्या और बुद्धि क्या है? एक व्यक्ति का धन दौलत क्या है, जमीन-जागीर क्या है, रूप लावण्य क्या है उस अनन्त ब्रह्माण्डनायक परमात्मा के आगे? जिनसे करोड़ों-करोड़ों व्यक्तियों को सब कुछ मिलता आया है, जिनके अखूट भण्डार से विद्वानों को विद्या, सत्तावानों को सत्ता सँभालने की योग्यता, धनवालों को धन सँभालने की योग्यता, यशस्वियों को यश मिलता है, मिल रहा था और मिलता रहेगा उस अखूट अनन्त स्वरूप का दीदार करना, आत्म साक्षात्कार करना यह इन्द्र का भी लक्ष्य बन गया था।

हम उस अखूट को नहीं जानते इसलिए थोड़ी-थोड़ी सुविधाओं के लिए मारे-मारे फिर रहे हैं। थोड़े-थोड़े दुःखों में बेचैन हो जाते हैं। हम जब उस अखण्ड के तरफ उन्मुख होते हैं तो हमें पता चलता है किः

सितारों के आगे कुछ जहाँ और भी हैं।
इश्क के इम्तिहाँ कुछ और भी हैं।।

जितना हमने संसार की चीजों के लिए, तुच्छ पदार्थों के लिए समय-शक्ति लगाया उसका दसवाँ भाग भी यदि एकाग्रता में लगाते और एकाग्रता का फल उस एक कोक जानने में लगाते तो आज हम कहीं-के-कहीं पहुँच जाते।

अनुक्रम

कलियुग में प्रभु-प्राप्ति सुलभ

हमने चित्त की वृत्तियों को चार पैसे कमाने में, चार दिन की गुलामी में खर्च कर दिया। अगर थोड़ा सा समय बचाकर उस परमात्मा में लगाते तो बेड़ा पार हो जाता। कलियुग में तो भगवान की विशेष कृपा है। इन्द्रदेव को तो बत्तीस-बत्तीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए, भांडे माँजते हुए गुरुचरणों में रहना पड़ा था। जबकि आसाराम को कलियुग में केवल चालीस दिन में बेशुमार माल मिल गया। आसाराम यह नहीं चाहते कि आपको चालीस दिन भांडे माँजने पड़ें। आपको तो यूँ ही मिल रहा है। आप विलम्ब क्यों करते हैं?

आपके भीतर अदभुत खजाने भरे पड़े हैं। आपके पास क्या क्या है, कितना है उसका बयान करना असंभव सा है। आप इतने महान हैं। सरस्वती देवी भी आपकी महिमा का वर्णन करने बैठें तो थक जायेंगी, ऐसी चीज़ हैं आप। लेकिन....

अनुक्रम

अपने को अनधिकारी मत मानो

अभागे विषयों ने, अभागी समझ ने, अभागे विचारों ने हमें उस सिंहासन से नीचे गिरा दिया है वरना मनुष्य मात्र उस तत्त्व के अनुभव का अधिकारी है। वह कठिन भी नहीं है, दूर भी

नहीं है, पराया भी नहीं है। कर्कटी जैसी राक्षसी को भी जब आत्म-साक्षात्कार हो गया और वह हिंगला देवी एवं मंगला देवी होकर पूजी जा रही हैं तो मनुष्य क्यों वंचित रह जाये? कर्कटी राक्षसी को तत्त्व का बोध हो सकता है, रैदास चमार को परमात्मा का बोध हो सकता है, सदना कसाई को आनन्दस्वरूप ईश्वर का साक्षात्कार हो सकता है तो तुमने क्या अपराध किया है? तुम क्यों अपने को अनाधिकारी मानते हो? तुम क्यों उस प्यारे को अपने से दूर मानते हो?

थोड़े-से कदम आप आगे चलो। आपकी बैटरी चाहे चार कदम ही आगे रोशनी डालती हो और फासला चाहे बहुत लम्बा लगता हो, चिन्ता न करो। आप चार चार कदम ही मंजिन तय करते जाओ। चार मिनट से ही ध्यान का प्रारम्भ करो। भीतर की रोशनी (समझ) बढ़ती जायेगी। एक बार भीतर का रस आ गया न, तो आप व्यवहार करते-करते भी साधना की यात्रा कर सकते हो।

अनुक्रम

बंगाली न्यायाधीश की कथा

ब्रिटिश शासन के समय की बात है।

एक बंगाली न्यायाधीश ज्यूरी में बैठे थे और किसी को फाँसी की सजा होने वाली थी। उस न्यायाधीश ने भीतर डुबकी लगाई तो ऐसा एहसास होने लगा कि मुजरिम निर्दोष है। उन्होंने चुकादे का विरोध किया। ज्यूरी के अन्य सब न्यायाधीश एकमत हो गये फिर भी वे अपने निर्णय पर अडिग रहे कि मैं इसको फाँसी नहीं लगने दूँगा। हाँ ना.... करते-करते आधा घण्टा बीत गया। इतने में ब्रिटिश सरकार का तार आया किः 'उस अपराधी को फाँसी न दी जाये। वह निर्दोष है।' तार जरा देरी से आया था।

बंगाली न्यायाधीश ने कहाः "अगर तुम्हारे निर्णय, सबूत, गवाहों और वकीलों के आधार पर इसको फाँसी दे दी जाती तो अब पूरी अंग्रेज सल्तनत उल्टी होकर टँग जाती फिर भी उसको बचा नहीं सकती थी। हम लोगों की तर्कशक्ति, हमारे निर्णय, केस के सबूत आदि सब मिलाकर भी बात नहीं समझी जाती थी वह मैंने घड़ीभर की एकाग्रता से समझ ली। जिसमें जरा-सी डुबकी लगाने से यह राज मेरी समझ में आया, उसको अब मैं पूरा पहचानूँगा। मैं अपने पद से इस्तीफा दे देता हूँ।"

हाईकोर्ट के उस बंगाली न्यायाधीश ने अपने पद का त्याग कर दिया। हरिद्वार पहुँचे। किसी सच्चे संत की खोज में लग गये। 108 और 1008 के बोर्डवाले तो कई मिले लेकिन प्रभुवाला कोई मिल जाय ! खोजते-खोजते हृषिकेश पहुँचे। आदमी हमेशा अपने से बड़ी शक्ति के आगे ही झुकता है। घर में तो उन्होंने छोटी-मोटी साधना की थी, कुछ आगे बढ़े थे। इससे जिस किसी साधु से प्रभावित नहीं हुए।

एक दिन रात्रि को सोचा किः "मुझे परमात्मा से मिलानेवाले गुरु की मुलाकात नहीं होती तो जीने में कोई रस नहीं। जीकर क्यों समय खराब करना? गंगाजी को अपना देह अर्पित कर दूँगा।"

मध्यरात्रि को गंगाजी के घाट पर गये। आज कल जहाँ कालीकमलीवाले बाबा का घाट है वहाँ खड़े हो गये। कमर में पत्थर बाँध दिया। तैरना जानते थे, शायद जीने का मोह जग जाय। मरने के लिए कृतनिश्चयी होकर पंजे के बल खड़े हो गये। एकाग्रता की साधना की हुई थी तो आर्तनाद से प्रार्थना की किः "हे प्रभु ! अगर तुमसे मिलाने वाला नहीं मिलता है तो तुमसे मिलने के लिए मैं तुम्हारे पास आता हूँ।" ऐसा करके 'गंगे हर....' की पुकार के साथ ज्यों ही कूदने के लिए उद्यत हुए कि उनकी एकाग्रता ने प्रकृति में अदभुत चमत्कार पैदा कर दिया। अव्यक्त परमात्मा व्यक्त होकर खड़े हो गये। उनका हाथ पकड़ लियाः

"अरे ! देहत्याग करता है ! मैं तेरा गुरु हूँ। जा, नारायण नारायण जपा कर।"

बुद्धिमान थे। हाईकोर्ट के जज थे। किसी भाव में या आवेश में आकर भ्राँति में फँसने वाले व्यक्ति नहीं थे। श्रद्धायुक्त होने के साथ ही अच्छे विचारक भी थे।

वे बंगाली न्यायाधीश उन विभूति के चरणों में अपना सिर रखते हैं कि इतने में वे सिद्ध गुरु अदृश्य हो गये। उनके आदेशानुसार इन्होंने 'नारायण' मंत्र का जप शुरु किया। घूमते-घामते वे पुण्यात्मा बड़ौदा के पास चाणोद करनाली पहुँचे। किसी वृक्ष के नीचे बैठे। श्वासोच्छ्वास के साथ गुरुमंत्र जप रहे हैं। इन्द्रियों को संयत कर रहे हैं। निगाहें बहुत दूर तक नहीं डालते हैं। कानों को व्यर्थ का श्रवण करने नही देते हैं। 'किसी आश्रम में रहूँगा, किसी मठ-मंदिर में रहूँगा तो शायद प्रवृत्ति भी करनी पड़े। इसलिए चलो पेड़ के नीचे ही रह लूँ।' ऐसा सोचकर पेड़ तले बैठ गये।

कहाँ तो आलीशान महल में रहने वाले और कहाँ पेड़ के नीचे निवास ! फिर भी कुछ घाटा नहीं है। आलीशान महल को छोड़कर पेड़ स्वीकार किया है लेकिन परमात्मा ने ब्रह्माण्ड छोड़कर उसके दिल का भी तो स्वीकार कर लिया है न !

तू दो कदम चल... तू चार कदम चल तो वह हजार कदम चलने को बाध्य है। उसका यह स्वभाव है। तुम एक कदम चलते हो तो वह न जाने कितने कदम करीब आ जाता है। नहीं तो मनुष्य की क्या ताकत ! इस हाड़-मांस के शरीर में सुख लेने के लिए उलझा हुआ प्राणी ! इस जल जाने वाली देह को मैं मानकर जीनेवाले तुच्छमति का प्राणी ! उसकी क्या ताकत कि वह जगत-नियन्ता को अपने हृदय में थाम सके ! यह उसी की तो करूणा है, उसी को तो कृपा है, उसी का तो प्रसाद है।

'नारायण.... नारायण....' जप करते-करते वे न्यायाधीश न बचे, इन्सान न बचे, नारायणस्वरूप हो गये। उनकी सँभाल करना अब प्रकृति की जिम्मेदारी हो गयी। पीछे-पीछे हरि फिरने लगे कि कहीं भूखा न रह जाये मेरा लाल। जहाँ बैठते वहाँ लोग भोजन धरने लगे।

सोचा मैं न कहीं जाऊँगा, यहीं बैठकर अब खाऊँगा।
जिसको गरज होगी आयेगा, सृष्टिकर्ता खुद लायेगा।।

माता के गर्भ से जब हम जन्म लेते हैं तब कितना व्यवस्थित इन्तजाम वह करता है ! भूख लगने से पहले दूध तैयार। न ज्यादा मीठा और न ज्यादा फीका, न ज्यादा गरम और न ज्यादा ठण्डा। जब चाहिए, मुँह लगाकर पी लो, नहीं चाहिए तो मुँह मोड़ लो। वह दूध अशुद्ध नहीं माना जाता, बिगड़ता नहीं, जूठा नहीं होता। कैसी बढ़िया व्यवस्था !

मुर्दे को प्रभु देत हैं, कपड़ा लकड़ा आग।
जिन्दा नर चिन्ता करे, ताँ के बड़े अभाग।।

अनुक्रम

अपने आपकी पहचान

आप गुजरात के नहीं हैं, बंगाल के नहीं हैं, एशिया खण्ड के नहीं हैं, अमेरिका खण्ड के नहीं हैं। आप तो अखण्ड के हैं, अखण्डस्वरूप हैं। आपकी जात और प्रभु की जात एक है। आप ईश्वर की जात के हैं। देह ब्राह्मण जात की हो सकती है, क्षत्रिय जात की हो सकती है, वैश्य जात की हो सकती है, लेकिन आप नारायण की जात के हैं। आप अपनी जात को नहीं पहचानते प्रभो ! आप अपने पर कृपा कीजिये। आप अपनी जात पहचानेंगे उसी समय सारे दुःख दूर हो जायेंगे। सारी चिन्ताएँ गायब हो जायेंगी।

उदर चिन्ता प्रिय चर्चा विरहीनां संभारणां।
स्वरूपे स्थिर था ए बधां सहेजे टले।।

सारे-के-सारे दुःख दूर करने के लिए विश्व का राज्य मिले फिर भी सारे दुःख दूर न होंगे। इन्द्र का पद मिलने पर भी सब दुःख दूर नहीं होंगे। लेकिन उस यार की जरा-सी खबर मिलते ही सारे दुःख पलायन हो जाते हैं।

अनुक्रम

भूमा का सुख

अगर राज्य, सत्ता या सुविधा मिलने पर आदमी पूरा तृप्त हो सकता है तो सम्राट अशोक इतना बड़ा साम्राज्य छोड़कर भिक्षुक क्यों होते? भरथरी अपना साम्राज्य छोड़कर सिर में खाक डालकर, अंग पर भस्म रमाकर फकीर क्यों होते? राजा जनक फकीरों के कदमों में अपने ताज को न्योछावर करके साष्टाँग दंडवत प्रणाम क्यों करते? वे लोग बुद्धू नहीं थे। वास्तविक में वे लोग बुद्धिमान थे। उनका अहंकार हट गया था और विनय गया था।

ब्रह्मविद्या आदमी को विनय देती है और लौकिक विद्या में अगर ठीक समझ नहीं है तो वह आदमी को अकड़ देती है। ऐसे लोग अकड़ूखान बन जाते हैं।

'मेरे पास जमीन है, जागीर है, पद है, प्रतिष्ठा है, कुर्सी है, सत्ता है' - इस प्रकार की अकड़ जब अपना मन करने लगे तब उसे समझाओ कि अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्डों को जो सत्ता स्फूर्ति देता है उस परम सत्ताधीश परमात्मा को छोड़कर इन तुच्छ चीजों में अकड़ रहा है?

जरा सा विचार करें तो कोई अभिमान टिक नहीं सकता, न धन का न सत्ता का, न सौन्दर्य का न साम्राज्य का। अगर अभिमान करना ही है तो यह अभिमान करें कि 'प्रभु मेरे हैं और मैं प्रभु का हूँ। सारे विश्व को जो नचा रहा है वह मेरा परमात्मा है। वही मेरा आत्मा है।' इस अभिमान में आ जा.... तेरा बेड़ा पार है।

मेरे पास एक सज्जन आये थे। बहुत भीड़ थी। आधे घण्टे के बाद तो लाइन में नम्बर लगा। बड़ी मुश्किल से पहुँचे। बोलेः "बापू ! यहाँ प्रथम बार आया हूँ। मेरे दो बेटे अमेरिका में हैं। एक डॉक्टर है, एक इन्जीनियर है। दो बँगले हैं। यहाँ तीन कारखाने हैं।"

मैंने कहाः "अरे काका ! इतनी मजदूरी करके यहाँ यह सुनाने आये?"

संत सही न कहें तो कौन कहेगा? यह भी उनके प्रति कल्याण की भावना थी इसलिए नकद सुना दिया, अन्यथा 'वाह सेठ वाह....!' कह देते।

'हजारों लोगों को जो चला रहा है, लाखों लोगों को जो नचा रहा है, पूरे अमेरिका में जो शासन कर रहा है, ऐसे रेगन जैसे हजारों रेगनों को पैदा कर करके कहीं किसी कोने में पहुँचा दिया फिर भी पैदा करने का जिसको गर्व नहीं कि वह परमात्मा हमारा है' - ऐसा अभिमान क्यों नहीं करते? 'दो लड़के अमेरिका में हैं.....' अरे भैया ! पचास बँगले कर ले, इससे क्या?

कह रहा है आसमाँ यह समाँ कुछ भी नहीं।
रो रही हैं शबनमें यह जहाँ कुछ भी नहीं।।
जिनके महलों में हजारों रंग के जलते थे फानूस।
झाड़ उनकी कब्र पर है निशाँ कुछ भी नहीं।।
जिनकी नौबतों से सदा गूँजते थे आसमाँ।
दम बखुद है कब्र में अब हूँ न हाँ कुछ भी नहीं।।

चार कदम चले तो उदघोष किया जाता था किः "महाराजधिराज अन्नदाता गौब्राह्मण प्रतिपाल... घणी खम्मा.... अजीतसिंह महाराज पधार रहे हैं....।" आज देखो तो उनकी हड्डियाँ तक नहीं मिलती।

यह संसार स्वप्न जैसा है। उसमें अपने मन और इन्द्रियों को चंचल करके आप अपना असली खजाना, अपना असली साम्राज्य क्यों खो रहे हैं?

संसार तेरा घर नहीं, दो चार दिन रहना यहाँ।
कर याद अपने राज्य की, स्वराज्य निष्कंटक जहाँ।।

मैं यही पूछना चाहता हूँ कि इन अभागे विषयों ने आज तक तुमको दे देकर क्या दिया है? जिम्मेदारियाँ दी, 'टेन्शन' (तनाव) दिये, कर्मों का जाल दिया, और क्या दिया है? जिस देर को आखिर में लोग जला देंगे उस देह की चिन्ता ही तो दी। और क्या दिया?

....तो कृपानाथ ! आप थोड़ा सा विचार करें। आप अपने पर कृपा करें। अपने पर न करें तो मुझ पर ही कृपा करें। एकाध घण्टा बीत जाय, दो घण्टा बीत जाय, आप थोड़ी-सी कृपा मुझ पर कर लेना। भीतर गोता मारकर अपने आपको खोजना। आप जहाँ भी हो, घर में हों चाहे ऑफिस में हों, स्कूल में चाहे बाजार में हों, अमदाबाद में हों चाहे दिल्ली में हों, जहाँ से भी आप आये हों वहीं से कृपा करना।

देखो, मैं गलती कर रहा हूँ। तुम लोग कहाँ से आये हो वह मैं जानता हूँ। तुम कहोगे कि हम अमदाबाद के मणिनगर से आये हैं, इन्दौर से आये हैं, भोपाल से आये हैं, मुम्बई से आये हैं, इंगलैण्ड से आये हैं, अमेरिका से आये हैं।

नहीं। तुम झूठ बोलते हो। तुम इनमें कहीं से भी आने वाले नहीं हो। तुम वहीं से आये हो जिसका बयान करना मेरे बाबा की भी ताकत नहीं है। ॐ...ॐ....ॐ...

मानव ! तुझे नहीं याद क्या ? तू ब्रह्म का ही अंश है।
कुल गोत्र तेरा ब्रह्म है सदब्रह्म तेरा वंश है।।

हम भूल गयें हैं इन्द्रियों की चंचलता में, मन की चंचलता में। भगवान शंकराचार्य कहते हैं कि एकाग्रता ही सब धर्मों का सार है, यही महा धर्म है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं-

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रि यः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये।।

'आसन पर बैठकर चित्त और इन्द्रियों की वश में रखते हुए मन को एकाग्र करके अन्तःकरण की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करे।'

(भगवदगीताः 6.12)

साधना का कोई नियम ले लें। प्रारम्भ में कठिन लगता है क्योंकि आदत नहीं है एकाग्र होने की, आदत नहीं है ध्यान करने की। योग की कोई युक्ति आ जाती है तो एकाग्रता आसान हो जाती है। योग की युक्ति से प्रभु-प्राप्ति सहज हो जाती है।

अनुक्रम

आज से ही....

मैं आपको बिल्कुल सच कहता हूँ कि संसार की मजदूरी करने में जितना समय गँवाते हैं उसका दसवाँ हिस्सा भी अगर परमार्थ में खर्चो तो पूरा संसार तुम्हारे चरणों का दास हो जायेगा।

प्रतिदिन दो मिनट आप युक्ति से एकाग्रता का अभ्यास कीजिये। मैं आपको एक घण्टा ध्यान में बैठे रहने को नहीं कह रहा हूँ। केवल दो मिनट ही बैठो लेकिन ठीक युक्ति से बैठो। सदगुरु के संकेत के अनुसार अभ्यास करो। इन दो मिनटों का अभ्यास आपको तीसरी मिनट में जाने को प्रेरित करे तो रस लेना, अन्यथा खड़े हो जाना। कोई मजबूर नहीं करता। दो मिनट में मिलने वाला रस आपको दस मिनट बैठायेगा और दस मिनट का रस आपको दो घण्टे तक उठने नहीं देगा। एक बार रस छिड़ गया ध्यान का तो मन और इन्द्रियों पर विजय होने लगेगी। मन पर विजय पाया तो सारे जगत पर विजय पाया समझो। लोगों की दृष्टि में चाहे तुम फटे-चीथड़े पहने बैठे हो, संसारी लोगों की दृष्टि में तुम निकम्मे आदमी लगते हो लेकिन ईश्वर की नजरों में तुम प्यारे दिखोगे, साधकों की दृष्टि में तुम संत दिखोगे।

वे महाभाग्यवान बंगाली न्यायाधीश 'नारायण... नारायण...' जपते हुए बैठे रहे। आसुरी वृत्ति के लोगों को वे निकम्मे आदमी लगे। जिनकी जैसी दृष्टि थी वैसा उनको देखकर बकवास चालू किया। गाँव के सज्जन लोगों ने देखा कि ये कोई संतपुरुष हैं। बड़े बुद्धिमान हैं। निरन्तर प्रभु-स्मरण में लगे रहते हैं। उनके एक-एक क्षण का सदुपयोग हो रहा है।

लोग उन्हें भिक्षा के लिए अपने घर पधारने का आमंत्रण देने लगे। उनको टालने के लिए वे शर्त रखते कि जिस घर के सब लोग मिलकर नारायण का कीर्तन करते-करते मुझे लेने के लिए आयेंगे उन्हीं के घर की भिक्षा लूँगा।

लोग ऐसा भी करने लगे। 'ऐसे मस्त संत अपने घर पधारकर भिक्षा ग्रहण करें यह हमारा अहोभाग्य है।'

भिक्षा मिलती उसे वे नर्मदा जी में डुबाकर, खारा खट्टा नर्मदामैया को अर्पण करके बचा हुआ सीधा-सादा भोजन ग्रहण करते और तृप्त रहते। अपने चित्त को एकाग्रता में मस्त रखते। 'नारायण' मंत्र का रटन करने से 'नारायण स्वामी' के नाम में प्रसिद्ध हो गये। उनका नामजप इतना गहरा हो गया कि वे वैखरी वाणी से मध्यमा में चले गये, मध्यमा से पश्यन्ति में और पश्यन्ति से परा वाणी में पहुँच गये। लोग उनके करीब बैठते तो लोगों को शांति मिलती। धीरे-धीरे भीड़ बढ़ती गयी। फिर वे बद्रीनाथ गये तो भक्त लोग उनके पीछे वहाँ पहुँच गये। प्रसाद बनाकर उनके सामने रखा तो वे बोलेः "यह भगवान का धाम है। मेरे नारायण पहले खायें, फिर मैं खाऊँगा।"

बड़ी पवित्रता से भगवान का थाल सजाया गया। नारायण स्वामी ने भगवान नारायण से कहा किः "खा ले।"

लोगों की नजरों में जो मूर्ति थी उसमें इनकी एकाग्रता ने चेतना ला दी। भगवान ने प्रसाद ग्रहण किया।

अनुक्रम

भक्त धन्ना जाट

खैर, ये तो न्यायाधीश थे, बुद्धिमान थे, बड़ी योग्यतावाले थे, सिद्ध गुरु ने मंत्र दिया था तो ऐसा हो सका। लेकिन मैं यों कहता हूँ कि धन्ना जाट एक ग्रामीण किसान का सीधा-सादा लड़का था। गाँव में आये हुए किसी पण्डित से भागवत की कथा सुनी थी। पण्डित जब सप्ताह पूरी करके, गाँव से दक्षिणा, माल-सामग्री लेकर घोड़े पर रवाना हो रहे थे तब धन्ना जाट ने घोड़े पर बैठे हुए पण्डित जी के पैर पकड़ेः

"महाराज ! आपने कहा कि ठाकुरजी की पूजा करने वाले का बेड़ा पार हो जाता है। जो ठाकुरजी की सेवा-पूजा नहीं करता वह इन्सान नहीं हैवान है। गुरु महाराज ! आप तो जा रहे हैं। मुझे ठाकुरजी की पूजा की विधि बताते जाइये।"

"जैसे आये वैसे करना।"

"स्वामी ! मेरे पास ठाकुरजी नहीं हैं।"

"ले आना कहीं से।"

"मुझे पता नहीं ठाकुरजी कहाँ होते हैं, कैसे होते हैं। आपने ही कथा सुनायी। आप ही गुरु महाराज हैं। आप ही मुझे ठाकुरजी दे दो।"

पण्डित जान छुड़ाने में लगा था लेकिन धन्ना जाट अपनी श्रद्धा की दृढ़ता में अडिग रहा। आखिर उस भँगेड़ी पण्डित ने अपने झोले में से भाँग घोटने का सिलबट्टा निकालकर धन्ना को दे दियाः "ले यह ठाकुर जी। अब जा।"

"पूजा कैसे करूँ गुरुदेव ! यह तो बताओ !"

गुरु महाराज ने कहाः "नहाकर नहलैयो और खिलाकर खइयो। स्वयं स्नान करके फिर ठाकुरजी को स्नान कराना। पहले ठाकुरजी को खिलाकर फिर खाना। बस इतनी ही पूजा है।"

धन्ना जाट ने सिलबट्टा ले जाकर घर में प्रस्थापित किया लेकिन उसकी नजरों में वह सिलबट्टा नहीं था। उसकी बुद्धि में वह साक्षात ठाकुर जी थे। पहले स्वयं स्नान किया। फिर भगवान को स्नान कराया। अब पहले उनको खिलाकर फिर खाना है। विधवा माई का लड़का। बाप मर चुका था। छोटा-सा खेत। उसमें जो मिले उसी से आजीविका चलानी थी। रोज एक रोटी हिस्से में आती थी। बाजरे का टिक्कड़ और प्याज या चटनी। छप्पन भोग नहीं। ठाकुरजी के आगे थाली रखकर हाथ जोड़े और प्रार्थना कीः "प्रभु ! खाओ। फिर मैं खाऊँ। मुझे बहुत भूख लगी है।

अब वह सिलबट्टा ! मूर्ति भी नहीं खाती तो सिलबट्टा कहाँ से खाय? लेकिन धन्ना की बुद्धि में ऐसा नहीं था।

"ठाकुरजी ! वे पण्डित जी तो चले गये। उनके पास खीर खाने को मिलती थी तो खाते थे। मुझ गरीब की रोटी आप नहीं खाते? आप दयालु हो। मेरी हालत जानते हो। फिर आप ऐसा क्यों करते हो? खाओ न ! आप शरमाते हो? अच्छा मैं आँखें बन्द कर लेता हूँ, खाओ।"

फिर आँख खोलकर धन्ना देखता है कि रोटी पड़ी है। खायी नहीं। धन्ना भूखा सो गया। गुरु महाराज ने कहा है कि खिलाकर खइयो। ठाकुरजी नहीं खाते तो हम कैसे खायें? एक दिन बीता। दूसरे दिन ताजी रोटी लाकर धरी। 'चलो, पहले दिन पण्डित जी का वियोग हुआ इसकी याद में नहीं खाया होगा। आज तो खाओ।' लेकिन धन्ना को निराश होना पड़ा। चार दिन ऐसे ही बीत गये।

धन्ना जाट के मन में बस गया कि ये ठाकुर जी हैं और रोटी नहीं खाते। कभी न कभी रोटी खायेंगे... खायेंगे। एकाग्रता ही हुई, और क्या हुआ?

चार-चार दिन बीत गये। ठाकुरजी ने तो खाया नहीं। धन्ना भूखा-प्यासा बैठा रहा। रोज ताजी रोटी लाकर ठाकुरजी को भोग लगाता रहा। पाँचवें दिन भी सूर्योदय हुआ और अस्त हो गया। छठा दिन भी ऐसे ही बीत गया।

सातवें दिन धन्ना आ गया अपने जाटपने पर। छः दिन की भूख-प्यास ने उसे विह्वल कर रखा था। प्रभु की विराग्नि ने हृदय के कल्मषों को जला दिया था। धन्ना अपनी एवं ठाकुरजी की भूख-प्यास बरदाश्त नहीं कर सका। वह फूट-फूटकर रोने लगा, पुकारने लगा, प्यार भरे उलाहने देने लगाः

"मैंने सुना था कि तुम दयालु हो लेकिन तुममें इतनी कठोरता, हे नाथ ! कैसे आयी? मेरे कारण तुम छः दिन से भूखे प्यासे हो ! क्या गरीब हूँ इसलिए ? रूखी रोटी है इसलिए ? मुझे मनाना नहीं आता इसलिए ? अगर तुम्हें आना नहीं है तो मुझे जीना भी नहीं है।"

उठाया छुरा। शुद्ध भाव से, सच्चे हृदय से ज्यों अपनी बलि देने को उद्यत हुआ त्यों ही उस सिलबट्टे से तेजोमय प्रकाश-पुञ्ज प्रकट हुआ, धन्ना का हाथ पकड़ लिया और कहाः

"धन्ना ! देख मैं खा रहा हूँ।"

ठाकुरजी रोटी खा रहे हैं और धन्ना उन्हें निहार रहा है। फिर बोलाः "आधी मेरे लिए भी रखो। मैं भी भूखा हूँ।"

"तू दूसरी खा लेना।"

"माँ एक रोटी देती मेरे हिस्से की। दूसरी लूँगा तो वह भूखी रहेगी।"

"ज्यादा रोटी क्यों नहीं बनाते?"

"छोटा-सा खेत है। कैसे बनायें?"

"और किसी का खेत जोतने को लेकर खेती क्यों नहीं करते?"

"अकेला हूँ। थक जाता हूँ।"

"नौकर क्यों नहीं रख लेते?"

"पैसे नहीं हैं। बिना पैसे का नौकर मिले तो आधी रोटी खिलाऊँ और काम करवाऊँ।"

"बिना पैसे का नौकर तो मैं ही हूँ।"

प्रभु ने कहीं नहीं कहा कि आप मुझे धन अर्पण करो, गहने अर्पण करो, फल-फूल अर्पण करो, छप्पन भोग अर्पण करो। जब कहीं कुछ कहा तो यही कहा है कि मैं प्यार का भूखा हूँ। प्यार गरीब और धनी, पढ़ा हुआ और अनपढ़, मूर्ख और विद्वान, सब प्रभु को प्यार कर सकते हैं। प्रभु को प्यार करने में आप स्वतंत्र हैं। अमेरिका जाने में आप स्वतंत्र नहीं। वीजा की गुलामी करनी पड़ती है लेकिन आत्मदेव में जाने के लिए किसी वीजा की जरूरत नहीं। परमात्मा को प्यार करने में आप नितान्त स्वतंत्र हैं।

कथा कहती है कि धन्ना जाट के यहाँ ठाकुरजी साथी के रूप में काम करने लगे। जहाँ उनके चरण पड़े वहाँ खेत छनाछन, रिद्धि-सिद्धि हाजिर। कुछ ही समय में धन्ना ने खूब कमाया। दूसरा खेत लिया, तीसरा लिया, चौथा लिया। वह एक बड़ा जमींदार बन गया। घर के आँगन में दुधारू गाय-भैंसे बँधी थीं। सवारी के लिए श्रेष्ठ घोड़ा था।

दो-चार-पाँच साल के बाद वह पण्डित आया गाँव में तो धन्ना कहता हैः "गुरु महाराज ! तुम जो ठाकुरजी दे गये थे न ! वे छः दिन तो भूखे रहे। तुम्हारी चिन्ता में रोटी नहीं खायी। बाद में जब मैंने उनके समक्ष 'नहीं' हो जाने की तैयारी की तब रोटी खायी। पहले मैं गरीब था लेकिन अब ठाकुर जी की बड़ी कृपा है।"

पण्डित ने सोचा कि अनपढ़ छोकरा है, बेवकूफी की बात करता है। बोलाः "अच्छा.... अच्छा, जा। ठीक है।"

"ऐसा नहीं गुरु महाराज ! आज से आपको घी-दूध जो चाहिए वह मेरे यहाँ से आया करेगा। और.... एक दिन आपको मेरे यहाँ भोजन करने आना पड़ेगा।"

पण्डित ने लोगों से पूछा तो लोगों ने बताया किः "हाँ महाराज ! जरूर कुछ चमत्कार हुआ है। बड़ा जमींदार बन गया है। कहता है कि भगवान उसका काम करते हैं। कुछ भी हो लेकिन वह रंक से राय हो गया है।

पण्डित ने धन्ना से कहाः "जो तेरा काम कराने आते हैं उन ठाकुरजी को मेरे पास लाना। फिर तेरे घर चलेंगे।"

दूसरे दिन धन्ना ने ठाकुरजी से बात की तो ठाकुरजी ने बतायाः

"उसको अगर लाया तो मैं भाग जाऊँगा।"

पण्डित की एकाग्रता नहीं थी, तप नहीं था, प्रेम नहीं था, हृदय शुद्ध नहीं था। जरूरी नहीं की पण्डित होने के बाद हृदय शुद्ध हो जाय। राग और द्वेष हमारे चित्त को अशुद्ध करते हैं। निर्दोषता हमारे चित्त को शुद्ध करती है। शुद्ध चित्त चैतन्य का चमत्कार ले आता है।

अनुक्रम

आज भी ऐसा हो सकता है

चलो आप कहेंगे कि धन्ना जाट की बात तो दूर है, पुरानी है। हो सकता है, नहीं भी हो सकता है। लेकिन आपके साथ आश्रम के ट्रस्टी शिवलाल काका बैठे हैं। उनका पुत्र रमेश सूरत से यहाँ आया था।

1981 में गुरुपूनम की ध्यानयोग शिविर थी। साबरमती नदी में उस साल काफी पानी आया था। आश्रम की सीढ़ियों के पास पानी के गहरे खड्डे में रमेश अपनी छः वर्ष की बच्ची के साथ डूबने लगा। हाथ से बच्ची छूट गयी, पानी में गायब हो गयी। रमेश तैरना जाने नहीं। हक्का-बक्का होकर पुकारने लगाः "बापू... बापू.... बापू.... साँईं.... साँईं....!"

कोई अदृश्य शक्ति प्रकट हुई। उसने बच्ची को खोजकर रमेश के हाथ में पकड़ा दिया और फिर दोनों को पानी से बाहर लाकर किनारे पर खड़ा कर दिया। रमेश ज्यों ही स्वस्थ होकर उस विभूति का पैर छूने लगा तो वह अदृश्य हो गयी। उस अव्यक्त परमात्मा को कोई बाधा नहीं कि वह जल में प्रकट नहीं हो सकता है। उसको कहीं भी प्रकट होने में कोई आपत्ति नहीं।

जले विष्णु थले विष्णु विष्णु पर्वतमस्तके।
ज्वालमाला कुले विष्णु सर्व विष्णुमयं जगत।।

जल में, स्थल में, पर्वत के शिखर में, आग की ज्वाला में भी विष्णु हैं। यह सर्व जगत विष्णुमय है।

अनुक्रम

योगयुक्तो भव

आप अपनी दिनचर्या से थोड़ा-सा समय निकालकर योगमुक्ति का अवलम्बन लो। इन्द्रियों को मन में लगाओ, मन को प्राणों में लीन कर दो अथवा बुद्धि में प्रतिष्ठित कर दो। फिर बुद्धि धीरे-धीरे उसी में प्रतिष्ठित हो जायेगी जहाँ से वह प्रकट हुई है। अपना जीवन तो धन्य हो ही जायेगा लेकिन जिस पर आपकी कृपादृष्टि पड़ेगी उसकी चिन्ताएँ भी भाग जायेंगी। आप इतने महान हो जायेंगे।

रोज केवल दो मिनट के अभ्यास से प्रारम्भ कीजिए। अपने पूजा के कमरे में अपने आसन के सामने एक आईना रखिये। उसमें अपनी आँखों की पुतलियाँ एकटक देखती रहिए। पलकें न गिरें। पहले एक मिनट, दो मिनट। दो-चार मिनट के बाद तीन मिनट, चार मिनट। आपके मन और इन्द्रियों की जितनी एकाग्रता होती जायेगी उतने आप अपने कार्यक्षेत्र में सफल होते जायेंगे। लेकिन यह एकाग्रता तुच्छ जगत के पदार्थों के लिए खर्च नहीं करना है। एकाग्र होकर खोजें कि मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? आपके अन्दर विवेक पैदा होगा। विवेक से जब वैराग्य आयेगा तब इन्द्रियों को रोकना नहीं पड़ेगा। वे अपने आप अन्तर्मुख हो जायेंगी।

संसार की विद्या ऐसी है कि पढ़ते जाओ और भूलते जाओ। मृत्यु के बाद वह साथ नहीं देती। लेकिन योगाभ्यास एक बार कर लो तो यह शरीर छूट जाये फिर भी काम देता है। ऐसी पढ़ाई छोड़कर अगर आप अपना मूल्यवान समय इधर-उधर खो रहे हो तो आप अपने साथ नितान्त शत्रुता कर रहे हो। आपको लगेगा कि मैं अपना मित्र हूँ लेकिन यदि मोक्षमार्ग की पढ़ाई नहीं करते तो आप अपने घोर शत्रु हैं।

यह मानव जन्म तमाम जन्मों का अंतिम जन्म भी हो सकता है और आदि जन्म भी हो सकता है।

अनुक्रम

ज्ञानज्योति प्रकटाओ

एकाग्रता की अग्नि के आगे भाव, आदेश, संस्कार भस्म हो जाते हैं और आप शुद्ध हो जाते हैं। एकाग्रता से ज्ञान प्रकट होता है। ज्ञान से कर्म दग्ध हो जाते हैं।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।।

'हे अर्जुन ! जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधनों को भस्म कर देती है, वैसे ही ज्ञानरूपी अग्नि सम्पूर्ण कर्मों को भस्म कर देती है।'

(भगवदगीताः 4.37)

कर्मों के फल भोगते-भोगते एक जन्म नहीं, करोड़ों-करोड़ों जन्म भी पूरे हो जायेंगे फिर भी कर्मों का अन्त नहीं होगा। कर्मों को कब तक भोगेंगे? उनको जलाना पड़ेगा।

कर्म तीन प्रकार के होते हैं- प्रारब्ध कर्म, संचित कर्म, क्रियमाण कर्म।

मान लो, हजारों मन अनाज का ढेर है। उसमें से आपने दस किलो पिसाकर आटा बनाया। जितना समय अनाज को आप सँभालकर रख सकते हैं उतना समय आटे को नहीं सँभाल सकते। वह बिगड़ जायेगा। उसे खा लेना पड़ेगा। वह आटा खाकर आपमें शक्ति आयेगी, उससे काम करोगे।

जो अनाज का ढेर है वह है संचित। आटा है प्रारब्ध और वर्तमान में जो कर रहे हैं वह है क्रियमाण। अपने कर्मों के महान संचय में से जरा-से कर्मों को लेकर आपने इस देह को धारण किया है। बाकी के संचित कर्म संस्कार के रूप में पड़े हैं। ये कर्म आपके पुण्य और पाप होंगे, शुभ और अशुभ होंगे। शुभ कर्म का समय चलता है तो आपको अनुकूलताएँ मिलती हैं और अशुभ कर्म का समय चलता है तो आपको प्रतिकूलताएँ मिलती हैं। प्रतिकूलताएँ मिलती हैं तो हम रोते हैं। उस समय हँसना चाहिए कि वाह ! कचरा निकल रहा है। अच्छा हुआ। अनुकूलताएँ मिलती हैं तो हम हँसते हैं। नहीं.... उस समय सजग रहना चाहिए और सोचना चाहिए किः

"अनुकूल प्रारब्ध आकर आदमी को फँसा देता है और प्रतिकूल प्रारब्ध आकर आदमी को भयभीत कर देता है। फँसा देना या भयभीत करना यह भोगों का स्वभाव है लेकिन मालिक का स्वभाव है तो इन दोनों से बचा लेना ! मैं मालिक का हूँ, मालिक मेरे हैं।" ऐसे सोचेंगे तो महाराज ! आप साधू बन जायेंगे, फिर आपका वेश चाहे संत का हो या गृहस्थ का, सेठ का हो या साहब का।

अनुकूलता आपके अन्दर आकर्षण पैदा कर देती है और प्रतिकूलता भय पैदा कर देती है।

अनुक्रम

निन्दक नियरे राखिये

रघुकुल में एक प्रतापी राजा हुए लेकिन उनके शरीर में कोढ़ हो गया। बड़े पीड़ित हो रहे थे। गुरु वशिष्ठजी के चरणों में पड़ेः "गुरु महाराज ! यह पीड़ा....?"

गुरु महाराज ने उनकी आँखों पर हाथ रख दिया। फिर बोलेः "अब दूर देख। क्या दिखता है?"

"एक बड़ा चमकता हुआ सुनहरा पहाड़। दूसरा कोयले जैसा काला पहाड़ दिख रहा है।"

"एक है तेरे पुण्यों का पहाड़ जिससे तुझे राज्य, धन, सत्ता, वैभव और यश मिला है। दूसरा है तेरे पापों का पहाड़ जिसके कारण यह रोग है, चिन्ता है, परेशानी है।"

"गुरुदेव ! इसे मिटाने का उपाय?"

"यह तो मेरे बस की बात नहीं है प्रभो !"

"तो महल के पीछे जो कचरा पड़ा है वह सब खा लो।"

"हे मुनिश्वर ! वह भी नहीं खा सकता हूँ। कोई सरल उपाय बताओ नाथ !"

वशिष्ठजी ने क्षणभर अपना चित्त शांत किया, उपाय खोज लिया। बोलेः "अपनी विधवा भाभी के महल के प्रांगण में शाम को छः बजे बिस्तर लगाकर सो जा।"

रघुवंशी राजा के पद पर.... विधवा भाभी के महल में....? लोग क्या कहेंगे? लेकिन दूसरा कोई उपाय था नहीं। राजा शाम को जाकर प्रांगण में लेट गये। वहाँ से गुजरते लोग कहने लगेः "ये देखो। बूढ़े की बुद्धि बिगड़ी है।" जिसको जैसा सूझा ऐसा बकने लगे। रात को दस बज गये। राजा चुपचाप अपने महल में लौट आये। दूसरे दिन देखा तो शरीर के सातवें भाग का कोढ़ गायब हो गया। ऐसे प्रतिदिन प्रांगण में जाते और एक-एक हिस्सा कोढ़ खत्म होता जाता। चौथे दिन रोग का काफी हिस्सा गायब हो गया। अशांति भी कम हो गयी। फिर वशिष्ठजी ने राजा की आँखों के ऊपर हाथ रखकर देखने को कहा तो राजा को दिखायी दिया कि पुण्यों का पहाड़ वैसे ही चमक रहा है और पापों का काला पहाड़ बिल्कुल छोटा-सा रह गया है।

वशिष्ठजी बोलेः "जिन्होंने तुम पर दोष का आरोप लगाया, तुम्हारी निन्दा की, तुमको दुश्चरित्र माना वे लोग तुम्हारे प्रारब्ध का हिस्सा अपने प्रारब्ध में लेते गये। तुम शुद्ध होते गये।"

दो दिन और बीते। वह काला पहाड़ बिलकुल छोटे-से कंकड़ जैसा रह गया। राजा के शरीर पर से कोढ़ गायब हो गया, केवल चेहरे पर छोटा सा चिह्न रह गया। उसमें कोई जन्तु हलचल कर रहा था।

"गुरुजी ! वह पूरा पहाड़ चला गया और कंकड़ मात्र रह गया है। चेहरे पर भी छोटा-सा निशान बचा है कोढ़ का और चित्त में थोड़ी-सी उदासी है।"

"वह मेरे हिस्से का है लेकिन तू सदाचारी, पवित्र आदमी है और तुझ पर लांछन लगाकर तेरी निन्दा करूँ और पाप अपने सिर पर लूँ? यह अब तू ही भोग ले।"

जब-जब महापुरुष पृथ्वी पर आये हैं - चाहे वे वशिष्ठजी हों चाहे रामकृष्ण हों, रमण महर्षि हों चाहे रामतीर्थ हों, बुद्ध हों, चाहे महावीर हों, कबीर जी हों चाहे नानकदेव हों, सुकरात हों चाहे वे क्राइस्ट हों - उनके निन्दक खड़े हो ही गये हैं। उन महापुरुषों के संचित कर्म तो ज्ञान से जल जाते हैं और उनके क्रियमाण कर्म उनकी प्रशंसा और निन्दा करने वाले लोग जाते हैं।

जो तां की सेवा करे संचित सुकृत सो देत।
दोषदृष्टि पुनि तामें पाप फल वहि लेत।।

बाकी बचे हुए प्रारब्ध कर्म ज्ञानी हँसते-हँसते भोगते हैं। वे समझते हैं कि प्रतिकूलता-अनुकूलता आती है और वह जाती भी है। आने जाने वाली चीज मुझ अचल को क्या करेगी? ऐसा समझकर ज्ञानी हर हाल में ज्यों-के-त्यों रहते हैं। अज्ञानी अनुकूलता-प्रतिकूलता में उलझ जाते हैं।

संचित कर्मों का संग्रह ज्ञानाग्नि से भस्म हो जाता है। क्रियमाण कर्म में कर्तृत्वबुद्धि नहीं रहती। इसलिए क्रियमाण कर्मों का फल लोग ले जाते हैं।

दो आदमी कहीं जा रहे हैं। रास्ते में थके हैं। दोनों को धूप ने, भूख-प्यास ने, कंकड़-पत्थर ने तंग किया है। एक आदमी को पता नहीं है इसलिए दुःखी हो रहा है किः "हाय रे ! थक गये, मर गये। अभी कितना दूर है, क्या पता।" ऐसा करके वह दुःख को ज्यादा बढ़ाता है। दूसरे को पता है कि अब एक ही किलोमीटर जाना है। वह कहता हैः

"इतना जब चल लिया तो एक किलोमीटर क्या है? चल लेंगे, क्या हर्ज है?" एक चिन्तित है दूसरा निश्चिन्त है।"

ऐसे ही जिनको बोध हो गया है वे ज्ञानी भी संसाररूपी मार्ग में चलते हैं और हम लोग भी चलते हैं। हम लोगों को पता नहीं लेकिन ज्ञानी के लिए सब रहस्य प्रकट होते हैं।

....तो कृपानाथ ! जब आपके जीवन में प्रतिकूलता आ जाये तो कृपा करना आप पर। अनुकूलता-प्रतिकूलता को इतना महत्त्व नहीं देना कि आप उन्हीं में खो जायें। अगर इस विषय में आप एकाग्रता लगायेंगे तो जैसे कड़ी सुपारी बादाम के मेल से पिघल जाती है ऐसे ही आपके कड़े कर्म ज्ञान के बादाम से पिघल जायेंगे।

जिन महापुरुषों को योग की युक्ति आ गयी उनकी कृपा का प्रसाद आपके जीवन में उतर जायेगा तो आपके लिए मोक्षमार्ग आसान हो जायेगा।

[अनुक्रम]

मूँड़ी का मूल्य

सम्राट अशोक रथ में जा रहे थे। यशोगान के नारे गूँज रहे थे, पुष्प बरसाये जा रहे थे ! अशोक ने दूर से आते हुए साधू को देखा तो झट से रथ से नीचे उतरे और पास जाकर उनके चरणों में अपना सिर रख दिया, प्रणाम किया।

"कहाँ तो गगनगूँजी यशोगान.... कहाँ तो चहुँ दिशा के राजा हमारे सम्राट के चरण-सेवन की इच्छा करें और कहाँ हमारे शहंशाह एक नंगे पैरवाले साधू के कदमों में सिर रखें ! हमारे महाराज का सिर किसी के कदमों में झुके यह हमें अच्छा नहीं लगता।" अशोक के अति निकटवर्ती वजीर ने निवेदन किया।

अशोक मुस्कराये। एक दिन मौका पाकर उन्होंने उस वजीर को एक थैला दिया जिसमें मछली, बकरा, सूकर, कूकर आदि की मूँड़ियों के साथ मानव मूँड़ी भी थी। अशोक ने वजीर से कहाः

"इन मूँड़ियों को बेचकर आओ।"

और सब मूँड़ियाँ बिक गयीं लेकिन मानव मूँड़ी नहीं बिकी। यह जानकर अशोक ने कहाः "मुफ्त में दे आओ, ऊपर से कुछ दे दो।"

दोपहर को दो बजे वह थका-माँदा वजीर लौटकर कहता हैः

"नाथ ! मनुष्य की मूँड़ी कोई नहीं लेता। लोग मुझे मूर्ख कह रहे हैं क्योंकि यह मूँड़ी किसी काम में आयेगी नहीं।"

अशोक ने कहाः "मैं तुझे यही समझाना चाहता था। जरा-सा दम टूट गया तो यह खोपड़ी किसी काम में नहीं आयेगी। जो किसी काम में नहीं आयेगी, निकम्मी हो जायेगी, उसको अगर मालिक के लिए, मालिक के प्यारे किसी संत के चरणों में झुका भी दी तो मैंने गलती क्या की?"

अभिमान आता है नासमझी से। विनय आता है समझ से।

[अनुक्रम]

बड़ा कौन है?

आपके घर कोई दुश्मन आ गया। आप विनय से सिर झुकाकर उसे ऊपर बैठाते हैं, पानी पिलाते हैं। आप नीचे बैठ जाते हैं तो क्या वह बड़ा हो गया? ना... ना...। वह बड़ा नहीं हुआ,

आपने उसको बड़ा बनाया। आप बड़े को बनाने वाले हुए। आपने किसी को मान देकर बड़ा कर दिया। वह तो जो होगा सो ही होगा लेकिन आप उसे बड़ा बनाने वाले हो गये।

भगवान विष्णु को भृगु ने लात मार दी। भगवान ने कहाः

"ऋषिवर्य ! आप संत के कोमल कदमों पर चोट लगी। हम तो सुर-असुरों के झगड़े निपटाने के लिए कुछ-न-कुछ करते ही रहते हैं तो हमारा हृदय कठोर हो गया है। हमारे इस कठोर हृदय पर आपके कोमल चरण ने प्रहार किया तो कोमल चरण को ही चोट लगी। लाओ, मैं जरा आपके चरणों की चंपी कर दूँ।"

भृगु ने कहाः "विष्णु जी आप महान हो।"

क्षमा बड़न को होत है, छोटन को उत्पात।
विष्णु को क्या घटी गयो, जो भृगु ने मारी लात।।

जीवन में अगर आपके दिल पर, आपके विचारों पर कोई लात मार दे तो याद रखनाः लात मारने वाला बड़ा नहीं होता है, लात को पचाने वाला बड़ा होता है।

अनुक्रम

ममता और आसक्ति

स्थूल शरीर में जब ममता होती है तो भोगों में आसक्ति होती है। सूक्ष्म शरीर में जब ममता होती है तो विचारों में, सिद्धान्तों में आसक्ति होती है। 'मैं सिद्धान्तवादी हूँ। ऐसा बिल्कुल नहीं चलने दूँगा। .....मैं श्री राम या श्री कृष्ण को ही मानूँगा.... मैं अल्लाह को ही मानूँगा...।' ये मत-मतांतर सूक्ष्म शरीर में ममता होती है, आग्रह होता है इसलिए होते हैं। पक्ष और प्रतिपक्ष तब होते हैं जब सिद्धान्तों में परस्पर विरोध हो जाता है। जब सूक्ष्म शरीर में ममता होती है तब मत-मतान्तर में उलझते हैं। स्थूल शरीर की ममता होती है तब भोगों में उलझते हैं।

योग की युक्ति जानने वाले महापुरुष हमें मत-मतांतर में और भोग में नहीं उलझने देंगे। परमात्म-रस का स्वाद चखाकर हमें परमात्मा में प्रतिष्ठित कर देंगे। इसीलिए सदगुरु का स्थान दूसरा कोई नहीं ले सकता। सदगुरु की जगह दुनियाँ में और कोई भर नहीं सकता। अविद्या के अन्धकार को निवृत्त करके आत्मज्ञान का प्रकाश जो भरते हैं उन गुरुओं को हमारा नमस्कार है। ऐसे एक गुरु भगवान शंकराचार्य कह रहे हैं- "मन और इन्द्रियों की एकाग्रता ही परम तप है। यह सब धर्मों से श्रेष्ठ है।"

आप इस परम तप का प्रारम्भ कर दें। **शुभस्य शीघ्रम्।**

अनुक्रम

एकाग्रता का आखिरी लक्ष्य

युक्ति से मुक्ति होती है। किसी अवस्था विशेष से एकाग्रता नहीं करना है। जो सदा एकाग्र है उसमें प्रतिष्ठित होना है। कुछ करके शांति पाना नहीं है, जो सदा शांत है उस अलख में विश्रांति पाना है। कुछ बनना नहीं है, कुछ बनाना नहीं है लेकिन आत्मदेव या परमात्मा जैसा है उसे वैसा-का-वैसा जानकर उसमें ही आराम पाना है। और कोई मजदूरी करना नहीं है साधना में।

'बापू ! आपकी बातों से तो लगता है कि साक्षात्कार बिल्कुल नजदीक है.....ॐ....ॐ.....ॐ....

अर्जुन कहता है कि मन बड़ा चंचल है। भगवान श्रीकृष्ण कुशल मनोवैज्ञानिक हैं। किसी भी व्यक्ति को अपना बनाना हो तो पहले उसके सिद्धान्तों को मान करके फिर उसे समझाया जाता है। भगवान ने स्वीकार कियाः हाँ.... मन चंचल है। फिर उसका उपाय बताया किः

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।

अभ्यास और वैराग्य से मन की चंचलता मिट सकती है। जो लोग बिना अभ्यास के वैराग्य चाहते हैं वे लोग बिना बोआई के फसल चाहते हैं। अभ्यास होगा तब वैराग्य होगा। वैराग्य होगा तब अभ्यास में रस आयेगा। अभ्यास होगा तब वैराग्य परिवपक्व होगा। जैसे पक्षी दो पंख से उड़ान लेता है, आदमी दो पैरों से चलता है ऐसे ही अभ्यास और वैराग्य एक दूसरे के पूरक हैं। अभ्यास और विवेक का सहारा लेकर जीवन में वैराग्य लाओ। सोचो कि इतना कमा लिया, फिर क्या? दो मकान बन गये, फिर क्या? चार संतानें हो गयी, फिर क्या? सारे विश्व का राज्य मिला लेकिन आखिर क्या?

आज जो स्थिति है उसमें आप जीने में राजी नहीं है। जो स्थिति नहीं है उसकी चाह है। यह मानव का स्वभाव है। आदमी चाहे तो छप्पर के नीचे भी जी सकता है और बड़े-बड़े महलों में भी जी सकता है। वेदान्त आपसे नहीं कहता कि आप दरिद्र होकर जियो। देखना, आप गलत अर्थ नहीं लेना। खास बात यह है कि आपके भीतर वैराग्य होना चाहिए। केवल त्यागी होना, व्रती होना ठीक है लेकिन संतत्व कुछ और चीज है।

चातक वर्षा की बूँद ही पीता है, बाकी पानी नहीं पीता तो क्या वह तपस्वी हो गया? मछली सर्दियों में भी पानी में रहती है तो क्या उसे गंगास्नान का पुण्य हो गया? बिना समझ का जो कुछ भी है वह परिश्रम है, तप नहीं है।

तपः सु सर्वेषु एकाग्रता परं तपः।

अनुक्रम

परमात्मा को अपना मानो

एकाग्रता के अभ्यास के साथ-साथ विवेक जगाते रहो। इतना कर लिया, आखिर क्या? इतना सारा समय इन्द्रियजगत में, मन की कल्पनाओं में चला जाये तो मनुष्य जीवन का अनर्थ हुआ। मनुष्य का मतलब क्या? **मनसा सीव्यति इति मनुष्यः।** मन से जो सी ले, सम्बन्ध जोड़ ले वह मनुष्य।' यह चद्दर हमारी... यह थाली हमारी... यह पैन्ट हमारी.... यह टाई हमारी....।' अरे ! टाई को अपनी कह सकते हो तो उस परमात्मा को अपना बनाने में तुम्हारा क्या जाता है? वास्तव में परमात्मा के सिवाय और कुछ तुम्हारा है ही नहीं। लेकिन चेतन से उत्पन्न होने के कारण मन में ऐसा कुछ चमत्कार है कि वह जैसा सोचता है वैसा सत्य ही भासता है। सत्यस्वरूप से ही मन फुरता है। आप जैसा सोचते हैं वैसा सत्य भासने लगता है। आप सोचें कि जगत में दुःख है, पीड़ा है, मुसीबत है तो जगत बिल्कुल ऐसा ही लगेगा। भोग की नज़र से देखेंगे तो जगत भोगने के लिए है ऐसा लगेगा। लेकिन संसार के स्वामी को पहचानने के लिए विचित्र परिस्थितियों से पसार होकर अंतिम लक्ष्य तक पहुँचाने की पाठशाला की नजर से संसार को देखेंगे तो उसमें आप उत्तीर्ण होते जायेंगे।

आपसे कोई ऊँचा दिखता है तो आप सिकुड़ मत जाना। कोई आपसे ज्ञान में, समझ में छोटा दिखता है तो अकड़ मत जाना। वह छोटा विद्यार्थी है। पढ़ते-पढ़ते, ठोकर खाते-खाते वह भी एक दिन पास हो जायेगा। जो उँचे पहुँचा हुआ है वहाँ एक दिन आप भी पहुँच जाओगे। बड़े को देखकर ईर्ष्या और छोटे को देखकर घृणा नहीं होना चाहिए। जो बड़े में है वही का छोटे में छुपा है और मुझमें भी वही का वही है।

कीड़ी में नानो बन बैठो हाथी में तू मोटो क्यूँ?
बन महावत ने माथे बेठो हाँकणवाळो तू को तू।।
ऐसो खेल रच्यो मेरे दाता ज्याँ देखूँ वाँ तू को तू...
दाता में दाता बन बेठो भिखारी के भेळो तू।।
ले झोळी ने मागण लागो देवावाळो दाता तू।।
ऐसो खेल....
चोरों में तू चोर बन बेठो बदमाशों के भेळो तू।
कर चोरी ने भागण लागो पकड़नेवाळो तू को तू।।
ऐसो खेल...

अनुक्रम

जब पुण्योदय होता है.....

ऐसा बोध जिन बुद्ध पुरुषों को, आत्म-साक्षात्कारी महापुरुषों को हुआ है उनका दर्शन करना भी सबसे बस की बात नहीं है। सात जन्मों के पुण्य जब जोर पकड़ते हैं तब आत्म-साक्षात्कारी महापुरुषों के दर्शन करने की इच्छा होती है। दूसरे सात जन्मों के पुण्य जब जोर करते हैं तब उनके द्वार तक पहुँचते हैं और तीसरे सात जन्म के पुण्य जब सहमत होते हैं तब उनका दर्शन-लाभ और उनके वचनों में श्रद्धा-विश्वास होता है। फिर वह पुण्यात्मा परमात्मा की ओर ठीक से चल पड़ता है।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

परिप्रश्नेन.....

(श्री उड़िया बाबाजी)

भजन की आवश्यकता

प्र. भजन करने से क्या लाभ है?

उ. भजन से प्रेमस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति होती है।

प्र. भजन न करने से क्या हानि है?

उ. भजन न करने से विषयों की प्राप्ति होगी। विषय अनित्य हैं, अतः नाश होने पर उनके कारण दुःख होगा। हम अवगुणी हैं, दीन हैं, दुःखिया हैं - ऐसी भावना को रोकने के लिए भी भजन करना आवश्यक है।

प्र. महाराज जी ! संसार में बहुत पाप होने लगा है। कैसे होगा?

उ. भैया ! जो तुम्हारे प्रभु करेंगे वही होगा। तुम क्यों फिक्र करते हो? जिसने इस संसार को बनाया है वह स्वयं इसकी चिन्ता कर लेगा। तुम्हें तो अपने प्रभु का भजन करते रहना चाहिए।

प्र. भजन और सत्संग में कौन श्रेष्ठ है?

उ. जिससे वृत्ति भगवदाकार हो जाती है वही भजन है। सत्संग, सेवा, नामजप और ध्यान-सभी से वृत्ति भगवदाकार होती है अतः ये सभी समान हैं।

प्र. भजन में अधिक समय लगाना चाहिए या सत्संग में?

उ. वैधी या गौणी भक्तिवाले को सत्संग में अधिक समय लगाना चाहिए, किन्तु अनुरागात्मिका भक्तिवाले को भजन में ही अधिक समय लगाना उचित है। शास्त्र की परम्परा से

भक्ति करने के क्रम को वैधी भक्त कहते हैं। अनुरागात्मिका भक्ति वह है जब भजन किये बिना रहा ही न जाय। इसके पश्चात् प्रेम-लक्षणा भक्ति स्वतः ही प्राप्त हो जाती है।

प्र. भजन करने में संचित कर्म बाधा देते हैं या नहीं?

उ. भजन करने के लिए दृढ़ता की आवश्यकता है। दृढ़ संकल्प हुए बिना तो सभी बाधा देते हैं। उनमें भी कुसंग के समान और कोई बाधा नहीं देता। संचित कर्म इसमें बाधा नहीं दे सकता। यह तो भजन न करने वाले को ही बाधा दे सकता है। सत्संग, सत्शास्त्रविचार और भजन से संचित कर्म दब जाते हैं। भक्तों के जीवन-चरित्र पढ़ने से भजन में भगवान को प्रकट किया है इसलिए भक्त भगवान से भी बढ़कर हैं। भक्तों के गुणों का गान भगवद् गुणगान से भी बढ़कर है। अल्प विग्रह में प्रीति नहीं होती। जिसका भक्तों में प्रेम हो गया वह तो भगवान के प्रेम का अधिकारी हो ही गया।

प्र. क्या भक्त को फिर मनुष्य जन्म मिलेगा?

उ. वह मनुष्योचित्त कर्म करेगा तो मनुष्य जन्म मिलेगा। एक श्री राधावल्लभजी का उपासक था। एक उसे सन्निपात हो गया। उसमें भी वह श्री राधाकृष्ण सम्बन्धी पद ही गाता रहा। दूसरा एक ठेकेदार था। उसे भी सन्निपात हुआ। उसमें वह 'अरे ! कंकड़ कूटो। मजदूरों को बुलाओ' ऐसा ही करता रहा। उससे भगवन्नाम लेने को कहा गया, परन्तु वह ले न सका। इससे कहा हैः **सदा तदभावभावितः।**

प्र. मनुष्य जीवन का प्रधान लक्ष्य होना चाहिए?

उ. मननशील को मनुष्य कहते हैं। उसके दो लक्ष्य होने चाहिएः ईश्वरप्रेम और शास्त्रोक्त व्यवहार।

प्र. सत्संग करते रहने पर भी वैराग्य क्यों नहीं होता?

उ. वैराग्य होने का कारण है भगवान में आसक्ति होना और वह होती है भगवान के भजन से। सत्संग भी एक प्रकार का भजन ही है। इसके दृढ़ अभ्यास से भगवान में आसक्ति होने पर वैराग्य होगा।

प्र. भजन और वेदान्त में क्या भेद है?

उ. भेद की बात मत पूछो। बस, भजन करते जाओ।

प्र. क्या भजन में वेदान्त बाधक है?

उ. भगवान को पाने के अनेक मार्ग हैं। उनमें भगवान श्रीकृष्ण को पाने का मार्ग तो है भजन और ज्ञानप्राप्ति का साधन है वेदान्त। इनमें से किसी एक मार्ग को अनन्य भाव से पकड़ना चाहिए। तभी सफलता होगी।

प्र. भजन बनता नहीं।

उ. इसलिए नहीं बनता कि उसमें आसक्ति नहीं है।

प्र. भजन में आसक्ति कैसे हो?

उ. लगातार भजन करने से ही भजन में आसक्ति होगी। जो भजन किये बिना ही प्रभुप्रेम पाना चाहते हैं वे तो मूर्ख हैं।

प्र. क्या करें, सांसारिक भोगों की आसक्ति बनी हुई है, इससे भजन में मन नहीं लगता। यह विषयों की आसक्ति कैसे हटे?

उ. लोहा लोहे से काटता है। अतः आसक्ति से ही आसक्ति दूर होगी। संसार में जिसकी बहुत आसक्ति है उसको अपनी वह आसक्ति भगवान में लगा देनी चाहिए। फिर ज्यों-ज्यों भगवान में आसक्ति बढ़ेगी, त्यों-त्यों ही संसार की आसक्ति घटती जायेगी? तब तो अपने आप ही भजन होने लगेगा। वह भजन ऐसा होगा कि उसका एक कण भी बहुतेरे पापियों को पवित्र कर देगा।

प्र. महाराजजी ! उपासना में रूचि कैसे हो?

उ. उपासना करने से ही उपासना में रूचि हो सकती है। जिसका जो इष्ट हो, उसे निरन्तर उसी का चिन्तन करते रहना चाहिए। हम जिसकी निरन्तर भावना करेंगे वह वस्तु हमें अवश्य प्राप्त हो जायेगी। उपासक तो एक नयी सृष्टि पैदा कर लेता है। इस प्राकृत संसार से उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं रहता।

प्र. भगवन् ! ऐसी दिव्य दृष्टि कैसे प्राप्त हो?

उ. वह तो भगवद् भजन से ही प्राप्त हो सकती है। भजन से ऐसी कौन-सी चीज है जो प्राप्त नहीं हो सकती। इससे अष्टसिद्धि और निर्विकल्प समाधि भी प्राप्त हो सकती है। ऐसे महानुभावों को ही दिव्य वृन्दावन के दर्शन होते हैं। साधारण बुद्धिवाले उसे कैसे देख सकते हैं? भक्तों की तो सृष्टि ही अलग होती है।

प्र. उनकी सृष्टि कैसी होती है?

उ. जिसमें निरन्तर रास हो रहा है।

प्र. वह कैसे दिखे?

उ. जो इस दुनियाँ से अन्धे हैं, उन्हें ही वह रास दिखायी देता है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐ

शास्त्र में कहा हैः **यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्।** अर्थात् जिस दिन वैराग्य हो उसी दिन विरक्त होकर चला जाना चाहिए। इसलिए यदि कोई भजन तथा ब्रह्मचर्य पालन में विरोध करे तो उसकी बात नहीं माननी चाहिए।

प्रारम्भ में यदि कोई दम्भ से भी भजन करता हो तो भी उसका विरोध नहीं करना चाहिए, क्योंकि साधुसंग निरन्तर होने से धीरे-धीरे उसका दम्भ छूट जायेगा और वास्तविक भजन होने लगेगा। इसलिए भजन न करने की अपेक्षा दम्भ से भी भजन करने वाला अच्छा है। भजन की नकल करना भी उत्तम है, क्योंकि वह सच्चे भजन में भी लग सकता है।

भाव कुभाव अनख आलसहूँ।

नाम जपत मंगलदिसी दसहूँ।।

भगवद्दर्शन की इतनी चिन्ता न करें, भगवच्चिंतन की अधिक चिंता करें। किसी भी प्रकार परमात्मा की शरण में जाने से माया छूट सकती है। जब तक हम और परमात्मा दोनों रहते हैं तब तक तल्लीनता नहीं होती।

दुनियाँ का चिन्तन करते हुए तुम ज्ञानी या भक्त बनना चाहो तो यह त्रिकाल में भी नहीं हो सकता। भगवन्नाम इसीलिए अखण्ड रूप से जपा जाता है। जिससे दुनिया का चिन्तन न हो। गुरु नानकदेव कहते हैं-

अलिफ अल्लाहनु याद कर गफलत मनो बिसार।
स्वासा पलटै नाम बिनु धिग जीवन संसार।।

ज्ञान और भक्ति क्या कोई खेल की चीजें हैं? ज्ञानी और भक्त को दुनियाँ की बातें करने की फुर्सत कहाँ होती है। केवल आवारा आदमी ही दूसरों की निन्दा या स्तुति किया करते हैं।

जिसको संसार में दुःख मालूम होता है, वही उससे छूटने की चेष्टा करता है, क्योंकि हम ऐसा नित्य सुख चाहते हैं, जिसमें दुःख का लेश भी न हो।

चित्त में निरन्तर भगवान का चिन्तन रहना चाहिए। वैराग्य की स्थिति भी चिन्तन से ही बनी रह सकती है। यदि चित्त चिन्तन से खाली होगा तो मोह में फँसेगा। मोह न भी हुआ तो तमोगुण ही बढ़ जायेगा। किन्तु भगवच्चिन्तन रहेगा तो मोह, काम या तमोगुण-किसी का प्रभाव नहीं पड़ेगा। अतः

घर में बाहर पंथ में, कहूँ रहे यह देह।
तुलसी सीताराम सों, लाग्यो रहे सनेह।।

आजकल कोई ठीक तरह से भजन नहीं करता। जैसा भजन किया जाता है, उससे कोई सिद्धि नहीं हो सकती। यदि विधिवत भजन किया जाय तो फौरन लाभ होगा। देखो, एक बार क्रोध करने से एक मास का भजन नष्ट हो जाता है। यदि एक साल में बारह बार क्रोध आ जाय तो सोचो कि कितना भजन बाकी रहा।

जिसको विषयों में दुःख प्रतीत होता है, वही भजन कर सकता है। जिसे विषयनन्द की चाट लगी है उससे भजन नहीं हो सकता।

यदि तुम भगवान को प्राप्त करना चाहते हो तो भजन करो।

निर्बलता बलवान् का सहारा लिये बिना नहीं जाता, इसलिए सबसे बड़े बलवान् का सहारा लेना चाहिए। सबसे बड़े बलवान तो भगवान ही हैं। अतः उन्हीं का सहारा लेना उचित है।

हमारे पापों का कुछ ठिकाना है? न जाने वैरागी लाख योनियों में कितने पाप किये हैं फिर तुम समझते हो कि चार दिन भगवन्नाम लेने से ही आनन्द आ जाय, यह कैसे हो सकता है? इतने पाप कैसे नष्ट होंगे? हाँ, भजन करते रहने से धीरे-धीरे सब नष्ट हो जायेंगे।

भगवान के स्मरण चिन्तन में इतना बल है कि वह अभय पद की प्राप्ति करा देता है। भगवान का स्मरण-चिन्तन करने वाला ही तो वास्तव में भक्त है। भगवान का स्मरण करके दुष्ट प्रकृति का मनुष्य भी अपना उद्धार कर सकता है।

केवल श्रद्धा की, भजन न किया तो कुछ भी नहीं होगा। श्रद्धा के साथ-साथ भजन भी अवश्य करो। मान लो, श्रद्धा तो दान करने की है, परंतु करते नहीं हो तो उससे क्या होगा? इसलिए काम तभी चलेगा जब श्रद्धा भी हो और भजन भी।

भगवान के भजन से चार बातों की प्राप्ति होती हैः

भगवान के ऐश्वर्य का अनुभव।

तात्कालिक अर्थात् दृष्ट दुःख का अभाव।

रजोगुण-तमोगुण का अभाव।

आनन्द की प्राप्ति अर्थात् जन्म-मरण का अभाव।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

भजन का अधिकारी

प्र. जो पुरुष पापों में प्रवृत्त है, क्या वह भजन-साधन में लग सकता है?

उ. हम तो यही नहीं समझते कि पापी कौन है। साधारणतया तो जो पुरुष भगवान से विमुख और अशास्त्रीय कर्मों में प्रवृत्त है उसे ही पापी कहा जाता है। किन्तु सम्भव है, उसमें पूर्वजन्म की सञ्चित कोई ऐसी सामग्री हो जिससे उसकी प्रवृत्ति भगवान की ओर हो जाये।

प्र. गीता जी में कहा हैः

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्य सम्यग्वयसितो हि सः।।

इससे तो मालूम होता है कि पापी मनुष्य भी भजन कर सकता है।

उ. जो भगवान का भजन करता है उसे पापी कैसे कह सकते हैं? किन्तु कहीं ऐसा भी देखा जाता है कि किसी-किसी पापात्मा की भी भजन में प्रवृत्ति हो जाती है। ऐसा भगवान की कृपा से ही होता है, जैसे कि सूरदासजी को हुआ। ऐसा कोई नियम नहीं है कि पापी भजन में प्रवृत्त हो ही नहीं। इस विषय में मैंने एक घटना स्वयं देखी है।

एक बार तारकेश्वर में एक बड़ा धनी पुरुष आया था। वह बड़ा ही दुर्व्यसनी था। एक दिन वह मद्यपान कर रहा था। उसी समय एक समय एक महात्मा उधर से होकर निकले। उसने उन्हें बुलाकर कहाः 'आओ, एक प्याला पी लो।'

महात्माजी ने कहाः 'अरे ! अब तो तेरी जिन्दगी थोड़ी ही रह गयी है। क्या अभी इस दुर्व्यसन से तेरी तृप्ति नहीं हुई?' इतना कहकर महात्माजी तो चले गये, किन्तु उसका चित्त उसी

समय बदलने लगा। उसने शराब की सारी बोतलें फोड़ डाली। बस, वह घर लौट आया और ध्यान-भजन में लग गया। वह पन्द्रह दिनों कि लिए खाद्य सामग्री अपने पास रख लेता और घर के भीतर बन्द रहकर ध्यान-भजन में लगा रहता। कुछ दिनों बाद उसकी धर्मपत्नी भी इसी प्रकार भजन में संलग्न रहने लगी। इस प्रकार महात्माजी के एक क्षण के संसर्ग से ही उसका जीवन सर्वथा बदल गया।

प्र. पाप होता कैसे है?

उ. संसार चिन्तन से।

प्र. पाप दूर कैसे हों?

उ. भगवान के चिन्तन से।

प्र. महाराजजी ! जो भक्ति नहीं करता, किन्तु जिसके आचरण शुद्ध हैं और जो देश की सेवा भी करता है वह कैसा है?

उ. क्या यह भक्ति नहीं है?

प्र. नहीं, वह तो देश की सेवा ही करता है।

उ. क्या संसार भगवत्स्वरूप नहीं है?

प्र. किन्तु यदि वह ईश्वर को मानता ही न हो, केवल देशसेवा ही करता हो?

उ. जो ईश्वर को नहीं मानता उसका कल्याण कदापि नहीं हो सकता। प्रत्येक प्राणी को भगवत्स्वरूप समझो। अच्युतभाववर्जित जो भी कर्म करोगे वह निष्फल ही होगा। अच्युतभाव के बिना तो ज्ञान भी निष्फल है। आज कल लोग ऐश्वर्य के मद से उन्मत हो जाते हैं इसी से ईश्वर को नहीं मानते। जब यह मद उतर जाता है तो झट ईश्वर में विश्वास हो जाता है।

ॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

जो भगवन्नाम लेगा वह शुभ कर्म अवश्य करेगा। यदि उसके कोई पूर्व पाप हों तो वे सब भी भगवत्कृपा से छूट जायेंगे।

भगवान कल्पवृक्ष हैं। जो जिस इच्छा से उनके पास जाता है उसे वही मिलता है। जीव की स्वाभाविक चाह है कि मैं सदा सुखी रहूँ। वह जितना ही अधर्म से, माया से डरेगा उतना ही भगवत्सुख बढ़ेगा।

चराचर जगत भगवान से भिन्न नहीं है - ऐसा जानकर जो भगवान का स्मरण करता है, वह सुखी है।

मौन से लाभ तो अभ्यासी पुरुष को ही हो सकता है। जो अभ्यासी नहीं है उसे मौन से कोई लाभ नहीं हो सकता। वह तो मौन रहकर मनोराज्य ही करेगा, जिससे तमोगुण की वृद्धि होगी। इसी प्रकार एकान्त से भी निर्वासनिक पुरुष को ही लाभ हो सकता है। सामान्य मनुष्य तो एकान्त में रहकर मनोराज्य ही करते हैं। उन्हें उससे कोई लाभ नहीं होता।

मजदूर दिन भर काम करके माह में जितने रूपये कमाता है, कलेक्टर उससे कई गुने रूपये कम समय काम करके पा लेता है। बड़े लोग थोड़े समय में ही बहुत ऊँचा काम कर लेते हैं। इसी प्रकार जो सच्चे साधक होते हैं उन्हें पाँच मिनट में ही जो भजनानन्द मिलता है वह दूसरों को दिन भर लगे रहने पर भी नहीं मिलता। वे उतने ही समय में एकदम प्रेम में मस्त हो जाते हैं।

जिसको भजन में आसक्ति न हो उसे एकान्त में नहीं रहना चाहिए। उसे सत्संग करना चाहिए। उसे यदि सत्संग न मिले तो शास्त्र का ही संग करे।

जो भजन करते हुए यह चाहता है कि मुझे ज्वर न हो, कष्ट न हो, उसे भगवान चौदह जन्मों में भी नहीं मिल सकते। दुःखों को सहन करते हुए भगवान का स्मरण करते चलो।

जब तक विषयों का राग न छूटे तब तक बराबर भजन, साधना एवं स्वाध्याय में लगा रहे। यदि वृत्ति भगवदाकार रहने लगे तथा भजन में राग न रहे तो फिर कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रहता। जिसे इष्टदेव का साक्षात्कार हो जाता है उसे कभी भी अवस्था में इष्ट की विस्मृति नहीं होती। इसी का नाम निष्ठा है। ऐसे निष्ठावान व्यक्ति की मस्ती का क्या कहना?

भक्त और अभक्त दोनों ही भजन करते हैं। किन्तु भक्त तो शरीर-रक्षा की दृष्टि से भोजन करता है और अभक्त स्वाद के लिए खाता है। यही दोनों में अन्तर है।

आचारभ्रष्ट पुरुष के हृदय में भक्ति का उदय नहीं होता है।

असात्त्विक आहार, ग्राम्य कथा और ग्राम्य भावनाओं को त्यागने से भक्ति का उदय होता है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ55

जो लोग अन्य चीजों के आश्रित होकर सुखी होने की कोशिश करते हैं वे पराधीन बने रहते हैं। आत्मा के आश्रित रहकर जो सच्चे आत्मसुख में गोता मारने की कोशिश करते हैं वे स्वतन्त्र सुख पाते हैं, औरों को भी इसका आस्वाद कराते हैं। हमारे कृत्यों में से, विचारों में से चीजों को आश्रित होकर सुख चाहने की भूल निकल जाय तो सुखी होना इतना आसान है जितना किसी धनवान को कंगाल होना आसान है। धन कमाने में तो वर्षों लग जाते हैं, पर धन का त्याग करने के लिए एक क्षण भी पर्याप्त है।

ऐसे ही इच्छित पदार्थ जुटाने में समय लगता है। अगर सच्चे हृदय से परमात्मा की शरण हो जाओ तो सारे कर्म, सारी इच्छाएँ उस अनन्त परमात्मा में विलीन हो जायेंगी। सदियों का थका हुआ जीव अपनी थकान मिटाने का अधिकारी बन जायेगा।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

बाहर के सब व्यवहार-प्रवृत्ति, क्रिया-कलाप करते हुए भी भीतर हृदय में क्रियारहित बनकर विहार करो। उत्पत्ति-विनाश से रहित, जरा-मरण से रहित, बिल्कुल शांत परम पद में स्थिर हो जाओ, यही शुद्ध, शांत, ब्राह्मी स्थिति है।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

चिन्तन-विलास

हमारा चित्त कुछ-न-कुछ चिन्तन सतत करता ही रहता है। मन में विचारों की श्रृँखलाएँ चलती ही रहती हैं। इनसे हमारे अंतःपटल पर संस्कारों की लकीरें खिंचती रहती हैं। इन संस्कारों से जीव का बन्धन तगड़ा होता रहता है।

चित्त में पहले से जो रेखायें पड़ी हैं, घाव पड़े हैं वे **अहं ब्रह्मास्मि** अथवा **सोऽहम्** का विचार करने में भर जाते हैं और राग-द्वेष के जो धब्बे पड़े हैं वे धुल जाते हैं।

गलत चिन्तन करने से अशांति होती है। उत्तम चिन्तन करने से आनन्द होता है। फिर गलत चिन्तन क्यों करना? दुःख के विचारों से दुःख बढ़ता है। पाप के विचारों से पाप बढ़ता है। चिन्ता के विचारों से चिन्ता बढ़ती है। यह हमारा अनुभव है, तुम्हारा अनुभव है, सबका अनुभव है। अगर नहीं है तो गंगामाई की कृपा से हो जायेगा। अपने अनुभव का आदर करो, भावी जीवन को उन्नत बनाने के लिए उनका उपयोग करो। अपने अनुभवों से ही सार ग्रहण करते जाओ।

लोभ और मोह आ जाते हैं तो प्रसन्नता गायब हो जाती है। लोभ आया तो संग्रह की रूचि हो जायेगी। धन का लोभ, वस्तुओं का लोभ, मान पाने का लोभ, शरीर को सजाने का लोभ। लोभ चित्त को अशुद्ध बना देता है। प्रसन्नता व निर्भयता चित्त का मूल स्वभाव है। यह मूल स्वभाव दब जाता है, गायब हो जाता है तो जीवन में अशांति के काँटे अंकुरित होने लगते हैं। मनुष्य अपने मूल से दूरातिदूर घसीटा जाता है।

ऐसा कोई बीज नहीं जिसमें अनन्त वृक्ष न छिपे हों। जरा-से-बीज में लाखों करोड़ों वृक्षों की संभावनाएँ सुषुप्त पड़ी होती हैं। एक जीव में अनन्त जीवों की परंपरा निहित है।

मूल को छोड़ा और डाली पत्तों को पकड़ा तो संसार की अनन्तता में घसीटे जाओगे। डाली-पत्तों को छोड़कर मूल की ओर जाओगे तो अनेकता में एकता को पाओगे। अपने मूल की ओर सरकने के लिए **शिवोऽहम्... सोऽहम्.... अहं ब्रह्मास्मि.....** आदि का चिन्तन बड़ा सहायक है।

चार प्रकार के निश्चय होते हैं-

माता-पिता के द्वारा मेरा जन्म हुआ है और सिर से पैर तक मेरा विस्तार है।

मैं सब पदार्थों से अलग और अति सूक्ष्म हूँ।

विश्व में जो-जो चीजें दिखती हैं वे सब मैं ही हूँ।

मैं और यह सारा विश्व आकाश के समान शून्यरूप है।

इन चार निश्चयों में प्रथम निश्चय बन्धनकारक, दुःखदायी और जन्म-मृत्यु की फाँसी में जकड़ने वाला। शीघ्रातिशीघ्र उसका त्याग करना ही श्रेयस्कर है। शेष तीन निश्चय मोक्षदायी हैं। साधक को चाहिए कि वह अपनी साधना का विकास करते-करते दूसरे निश्चय पर से तीसरे निश्चय पर पहुँचे और तीसरे पर से चौथे पर पहुँचकर पर सिद्धता में प्रतिष्ठित हो जाय।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

वीरभोग्या वसुन्धरा

पृथ्वी वीरों के लिए है, कायरों के लिए नहीं, डरपोक के लिए नहीं। बल ही जीवन है। बल का मतलब यह नहीं कि सबसे लड़ाई करते रहो। लोगों से भिड़ जाना, अकड़ जाना, वाद-विवाद में उतर जाना बल नहीं है। **तमाम परिस्थितियों में सम रहने का नाम ही बल है।** कैसी भी विकट परिस्थितियाँ आयें फिर भी चित्त में समता बनी रहे, धीरता बनी रहे, निष्ठा बनी रहे। ऐसी समता सच्ची वीरता है जो ईश्वर के द्वार तक पहुँचा देती है।

समचित्त रहकर युद्ध होता है तो भी कोई घाटा नहीं और चित्त में विषमता रखकर कमरे में अगरबत्ती जलाकर ध्यान करने बैठने का भी कोई खास लाभ नहीं है। चित्त की समता का मूल्य सर्वोत्तम है। यह समता लाने के लिए सब साधन-भजन-ध्यान किये जाते हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

संस्कृति और संत

संसार की चार संस्कृतियाँ सबसे पुरानी हैं।

भारतीय संस्कृति, मिस्र की संस्कृति, चीन की संस्कृति और यूनान की संस्कृति।

मिस्र, चीन और यूनान संस्कृतियों का यदि कोई दर्शन करना चाहे तो उसे इन देशों के जीवन में उनके दर्शन नहीं होते। या तो ये संस्कृतियाँ वहाँ के खण्डहरों में दिखती हैं अथवा अजायबघरों। मात्र भारतीय संस्कृति ही संसार की ऐसी संस्कृति है जिसकी परम्परा के दर्शन आज के भारतीय जीवन में भी होते हैं।

भारतीय संस्कृति की इस दीर्घ परम्परा का रहस्य, इसका कारण क्या है?

कहना न होगा कि इस संस्कृति के जीवन में कुछ ऐसे तत्त्वों का समावेश है जो काल प्रवाह में भी सदा अपना अक्षय स्थान बनाये रखते हैं और यही तत्त्व संस्कृति के इस ताने बाने को सदा पुष्ट रखकर उसका पोषण करते हैं। इनमें प्रधान रूप से धर्मतत्त्व और परहितपरायण संतजन हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

भजन माने क्या?

जिस कर्म से, जिस श्रवण से, जिस चिन्तन से, जिस जप से, जिस सेवा से भगवदाकार वृत्ति बनती है वह भजन कहलाता है।

संसार की आसक्ति दूर करने के लिए भजन की आसक्ति अत्यंत आवश्यक है। तमाम ज्ञानों एवं बलों का जो आधार है उस आत्मबल एवं आत्मज्ञान को प्राप्त करना ही तुम्हारे जीवन का उद्देश्य होना चाहिए। जीवन का सूर्य ढल जाये उससे पहले जीवनदाता में प्रतिष्ठित हो जाओ, अन्यथा पछताना पड़ेगा। असफलता एवं दुर्बलता के विचार उठते ही तुरंत उन्हें भगवन्नाम एवं पावन पुस्तकों के अध्ययन से हटाते जाओ।

ऐ मानव ! उठ... जाग.... अपनी महानता को पहचान। कब तक भवाटवी में भटकता रहेगा? जो भगवान वैकुण्ठ में, कैलास में एवं ऋषियों के हृदय में है वही का वही, उतने का उतना तुम्हारे पास भी है। उठ.... जाग... अपने प्यारे को पहचान। सत्संग करके बुद्धि को विकसित कर और परब्रह्म परमात्मा में प्रतिष्ठित हो जा।

शाबाश, वीर....! शाबाश....! हिम्मत...... साहस......

जो कुछ कर, परमात्मा को पाने के लिए ही कर। वही तुझे परमात्मा में प्रतिष्ठित महापुरुषों तक पहुँचा देगा और तू भी परमात्मा में प्रतिष्ठित हो जायेगा।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम